पढ़ें और सीखें योजना

ज्योतिबा फुले

दुर्गा प्रसाद शुक्ल
विभागीय सहयोग : हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अप्रैल 1991
चैत्र 1913
PD15T-PM

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी : मुख्य संपादक
पूरनमल : संपादक

यू. प्रभाकर राव : मुख्य उत्पादन अधिकारी
डी. साईं प्रसाद : उत्पादन अधिकारी
चंद्रप्रकाश टंडन : कला अधिकारी
सुबोध श्रीवास्तव : उत्पादन सहायक

मूल्य : रु० 6.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित तथा प्रिन्ट एंड फोटोटाइप सैटर्स, बी-62/8 नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली 110 028 में फोटो कम्पोज होकर, सुप्रीम ऑफसेट प्रेस, [illegible] नई दिल्ली-110 017 में मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले तीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वत: पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है, जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त-पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही ना काफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अन्तर्गत, "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि 1991 के अंत तक निम्नलिखित विषयों पर हिन्दी में 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें

ख. कथा साहित्य

ग. जीवनियाँ

घ. देश-विदेश परिचय

ङ. सांस्कृतिक विषय

च. वैज्ञानिक विषय

छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने तक पहुंच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक **ज्योतिबा फुले** के लेखन के लिए श्री दुर्गा प्रसाद शुक्ल ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तकमाला की यह योजना प्रोफेसर अर्जुन देव के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डॉ. रामजन्म शर्मा, डॉ. सुरेश पांडेय, डॉ. हीरालाल बाछोतिया और डॉ. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का कार्य हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डॉ. रामदुलार शुक्ल देख रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ. बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि उनसे इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के० गोपालन
निदेशक

नई दिल्ली — राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

दो शब्द

नागपुर महानगरपालिका की नवनिर्मित सब्जी मंडी। विशाल द्वार, जिसके दोनों ओर दो भव्य मूर्तियां। एक ओर एक किसान स्त्री की मूर्ति। सिर पर टोकरा। टोकरे में तरह-तरह की सब्जियाँ। स्त्री ने एक हाथ से टोकरा संभाला हुआ है और दूसरे हाथ से वह एक नन्हे से बालक की अंगुलियाँ पकड़े है।

दूसरी मूर्ति एक भव्य पुरुष की है। सिर पर साफा, तन पर कोट, घुटनों तक धोती। गोल मुंह। दाढ़ी बढ़ी हुई। इस सब्जी मंडी का नाम दिया गया है—महात्मा फुले मंडी।

नागपुर में रहतें हुए मैं कई बार इस सब्जी मंडी से गुजरा और जितनी बार उसके सामने से गुजरा मेरी दृष्टि इन दोनों मूर्तियों पर पड़ी। मुझे ज्ञात हुआ कि साफे वाली मूर्ति महात्मा फुले की है। मैंने सोचा, महर्षि कर्वे और बाबा साहब अम्बेडकर की तरह महात्मा फुले भी महाराष्ट्र के कोई महान समाज सुधारक होंगे।

महात्मा फुले के संपूर्ण जीवन को जानने का अवसर, मुझे तब मिला, जब मुझे उनकी जीवनी लिखने का सुझाव मिला। मुझे उनके जीवन की कुछ घटनाएँ भी बताई गईं और उन्हें जानकर मुझे लगा कि मुझे महात्मा फुले की जीवनी अवश्य पढ़नी चाहिए और हो सके तो उसे बच्चों के लिए भी लिखना चाहिएं। इसके बाद मैंने नई दिल्ली के महाराष्ट्र परिचय केन्द्र से महात्मा फुले के संबंध में प्राप्त समस्त पुस्तकें पढ़ीं। मुझे स्वयं महात्मा फुले के द्वारा लिखित कुछ पुस्तकें भी पढ़ने को मिलीं। इसके बाद मैं पुणे गया। वहाँ भी मुझे महात्मा फुले के संबंध में कुछ साहित्य मिला। इनमें एक महत्वपूर्ण पुस्तक थी श्री धनंजय कीर की, महात्मा फुले की जीवनी। महात्मा फुले की विभिन्न जीवनियों में कुछ अंतर भी मिला। मैंने इस जीवनी के लिखने के लिए श्री कीर की पुस्तक को ही आधार बनाया। मैं पुणे में महात्मा फुले द्वारा स्थापित स्कूल देखने भी गया। आज इसकी हालत ठीक नहीं है। मैं उनके निवास स्थान पर भी गया। उनका निवास स्थान

आज राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिया गया है और उसका रखरखाव आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया द्वारा किया जा रहा है।

हिन्दी में बच्चों के लिए महात्मा फुले की जीवनी अब तक अनुपलब्ध है और एन सी ई आर टी उनकी जीवनी प्रकाशित कर बहुत बड़ा कार्य कर रही है। इसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है। व्यक्तिगत रूप से मैं प्रो. अनिल विद्यालंकार और अपने मित्र डॉ. बाछोतिया का इसलिए आभारी हूँ कि यदि वे मुझे यह जीवनी लिखने का कार्य न सौंपते तो शायद मैं इस देश के एक महान समाज सुधारक के व्यक्तित्व और कृतित्व से अपरिचित ही रहता।

दुर्गाप्रसाद शुक्ल

विषय-क्रम

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

एक और [illegible]
(मई 1988)

बंबई के मांडवी इलाके का कोलीवाड़ा सभाभवन। रंगबिरंगी तोरणों से सुसज्जित। लोगों की भारी भीड़। भीड़, जिसमें अमीर भी हैं और गरीब भी। शिक्षित भी, अशिक्षित भी। अधिकांश लोगों के वस्त्र फटे हुए हैं। सिर पर बंधा हुआ साफा भी फटा हुआ है। कुछ लोग टोपियाँ पहने हैं—पुरानी, तेल से भीगी। पर सबके चेहरे पर उत्साह है। वातावरण में चारों ओर उल्लास है।

आज ये सब लोग एक महापुरुष का अभिनंदन करने एकत्र हुए हैं। अभिनंदन से अधिक, वे उस महापुरुष के प्रति अपनी कृतज्ञता, अपना स्नेह व्यक्त करने के लिए स्वेच्छा से जुटे हैं। इस महापुरुष ने उनके हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाई है। अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार को दूर किया है। उन्हें स्वाभिमान और सम्मान के साथ जीना सिखाया है। इस महापुरुष को अंगरेज भी सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बड़ौदा के महाराजा श्री सयाजीराव गायकवाड़ ने तो इस महापुरुष को "बुकर टी. वाशिंगटन" की उपाधि से सम्मानित करने का सुझाव दिया था।

बुकर टी वाशिंगटन : अमरीका के महान नेता। वाशिंगटन ने अमरीका में दासता के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी। उनके प्रयत्नों से अमरीका में मानव-मानव के बीच समानता की भावना का उदय हुआ था। उन्होंने सारे अमरीका को एक किया था। वे अमरीका के राष्ट्रपति भी निर्वाचित हुए थे।

अब उन्हीं के नाम की उपाधि से एक भारतीय को सम्मानित किया जाना था। क्यों? क्योंकि इस व्यक्ति ने भी छुआछूत और ऊंच-नीच के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा था। जिन लोगों को सदियों से शिक्षा से वंचित रखा गया था, उन्हें विद्या प्राप्त करने का अधिकार दिलाया था। इसके लिए उन्हें नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़े थे। विरोध और विपत्तियां सहनी पड़ी थीं। पर वे अपने लक्ष्य से नहीं डिगे थे। इस लड़ाई में पहले वे अकेले ही थे। धीरे-धीरे और लोग उनके साथ होते गए और आज उन्हें सम्मानित किया जा रहा था। उन्हें "महात्मा" की उपाधि से विभूषित किया जा रहा था।

कौन थे ये महापुरुष, जिन्हें लोग उत्साह और उल्लास से "महात्मा" की उपाधि देने जा रहे थे?

ये थे ज्योतिबा फुले

ज्योति अर्थात् प्रकाश

सचमुच ज्योतिबा प्रकाश पुंज थे। एक महान सामाजिक क्रांति के ज्योति स्तंभ थे।

यहाँ प्रस्तुत है, उन्हीं की जीवनी।

2

"गोरे" से "फुले"

आज से डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक पूर्व का भारत। तब देश पराधीन था। समाज तरह-तरह की कुप्रथाओं और कुरीतियों का शिकार था। जाति-पांति का भेद-भाव, छुआछूत का विचार। विद्याध्ययन और ज्ञान-प्राप्ति का अधिकार केवल कुछ वर्गों तक सीमित था। स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने की जरूरत ही नहीं समझी जाती थी। इसी तरह निम्न जाति के समझे जाने वाले लोग भी शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते थे। समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग शिक्षा और ज्ञान से वंचित था।

ऐसे ही समय में सन् 1827 में ज्योतिबा फुले का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम था गोविंद राव। माता का नाम था चिमणा बाई। गोविंद राव फूलों की खेती करते थे। इसीलिए उनका कुलनाम "फुले" पड़ गया था। पहले उनके वंशज "गोरे" कहलाते थे।

वे सतारा जिले के कडगुण नामक ग्राम के निवासी थे। कडगुण सतारा से पूर्व में पच्चीस मील दूर है।

इसी गांव में गोरे परिवार पीढ़ियों से निवास करता था। गोरे थे, वेतनभोगी ग्राम सेवक जैसे। वे चौगुले कहलाते थे। उनका काम था—सरकारी कागजात लाना-ले जाना। मालगुजारी की उगाही के समय ग्राम के अधिकारी की सहायता करना। फसल की जांच के समय उपस्थित रहना।

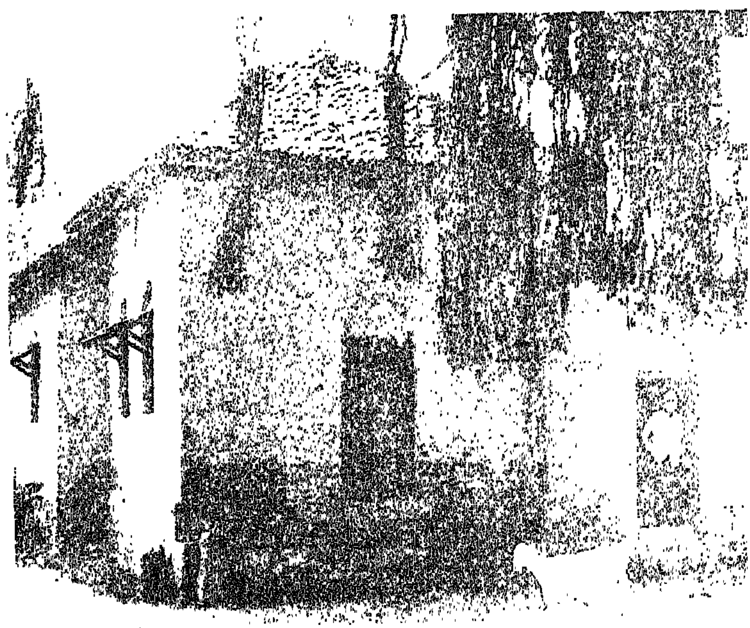
गांव में पाटिल थे गायकवाड़। चौगुले और पाटिल की ग्राम में बड़ी प्रतिष्ठा थी।

गोरे जाति से माली थे। उन दिनों माली निम्नजाति के माने जाते थे। उनकी गणना शूद्रों में होती थी। लेकिन गोरे-परिवार को अपने पैतृक-व्यवसाय पर गर्व था। वे स्वाभिमानी थे।

इसी गांव में कुलकर्णी नामक एक ब्राह्मण परिवार था। एक दिन किसी बात पर गोरे और कुलकर्णी में विवाद हो गया। अंत में गोरे को कडगुण छोड़ना पड़ा। वे खानवाड़ी नामक गांव में बस गए।

गोरे को जीवनयापन के लिए कुछ करना था। वे परिश्रमी थे। वे मेहनत मज़दूरी करने लगे। शीघ्र ही उनकी स्थिति सुधर गई। खानवाड़ी में लोग उन्हें मानने लगे। यहाँ उनके एक पुत्र हुआ उसका नाम रखा गया—शेतिबा।

ज्योतिबा फुले का निवास स्थान



यही शेतिबा, ज्योतिबा फुले के दादा थे। पिता की मृत्यु के बाद शेतिबा पुणे चले गये। वहां उनकी भेंट एक फूल-वाले से हो गयी। उसने उन्हें अपने यहां काम दे दिया।

अब शेतिबा ने विवाह कर लिया। उनके तीन पुत्र हुए। रानोजी, कृष्ण और गोविंद। शेतिबा का परिवार बढ़ता देखकर फूलवाले ने उन्हें फूलों के हार और गजरे बनाने का काम दे दिया। धीरे-धीरे पूरे परिवार ने इस धंधे को अपना लिया। अब वे गोरे से 'फुले' हो गये। फूलों के व्यवसाय में फुले-परिवार ने बड़ी उन्नति की। वे परिश्रमी थे। शीघ्र ही उनके काम की चर्चा पेशवा तक पहुँची। पेशवा उनके कार्यों से प्रसन्न भी हुए और प्रभावित भी। उन्होंने शेतिबा को पैंतीस एकड़ भूमि पुरस्कार स्वरूप दे दी। फुले-परिवार की प्रतिष्ठा और बढ़ गई।

एक दिन शेतिबा का निधन हो गया। रानोजी उनका बड़ा पुत्र था। उसने पिता के नाम पर चढ़ी जमीन अपने नाम करवा ली। फिर एक दिन अपने दोनों छोटे भाइयों कृष्ण और गोविंद को घर से निकलवा दिया। दोनों भाई निराश्रित हो गए। लेकिन गोविंद राव ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपनी मेहनत से पुणे में फुलों की एक दुकान लगा ली।

पुणे के पास ही एक गांव था धन कवाड़ी। वहां जगाड़े कुलनामवाला एक माली था। उसकी दो बेटियां थीं— चिमणाबाई और घोंडाबाई। पाटील ने चिमणाबाई का विवाह गोविन्दराव फुले से कर दिया। और घोंडाबाई का हड़पसर के एक क्षीर सागर कुल में। घोंड़ाबाई की एक प्रतिभासंपन्न बेटी थी सगुणाबाई।

बाद में यही सगुणा बाई ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई की प्रेरणा बनीं।

गोविन्दराव और चिमणाबाई के तीन पुत्र हुए। इनके नाम थे— राजाराम, घोंडिबा और ज्योतिबा। यही ज्योतिबा आगे चलकर महात्मा फुले के नाम से ख्यात हुए।

3

कष्टों भरा बचपन

ज्योतिबा को माँ का प्यार नहीं मिल पाया। उनकी माँ चिमणाबाई किसी रोग के कारण चल बसीं। तब ज्योतिबा केवल नौ माह के थे। उनके पिता गोविन्द राव पर दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा। एक ओर दुकान का काम। दूसरी ओर नन्हे ज्योतिबा के लालन-पालन की समस्या। गोविन्दराव चिंतित हो उठे। क्या करें? किसी की सहायता लें।

तभी सगुणाबाई क्षीर सागर ने उनकी समस्या दूर करने का बीड़ा उठाया। सगुणाबाई ज्योतिबा की मौसेरी बहन थीं। वे ज्योतिबा की माँ चिमणाबाई की बहन घोंड़ाबाई की बेटी थीं।

सगुणाबाई विधवा थीं। मायके में भी उन्हें कोई सहारा देनेवाला न था। पर वे साहसी थीं। संघर्षों से जूझना जानती थीं। उन्होंनें जॉन नामक एक व्यक्ति के यहाँ आया की नौकरी कर ली। जॉन एक मिशनरी था। सगुणाबाई पढ़ी-लिखी नहीं थीं। उन दिनों लड़कियों की शिक्षा के लिए कोई शाला ही नहीं थी। यह इसलिए कि उन्हें पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती थी। लेकिन क्या व्यक्ति केवल शाला में ही शिक्षा पाता है? जीवन भी एक पाठशाला होती है। व्यक्ति उससे भी बहुत कुछ सीखता है। सगुणाबाई ने भी जीवन की पाठशाला से बहुत कुछ सीखा। वे प्रतिभासंपन्न थीं। मिशनरी जॉन के घर उसके बच्चों की देख-रेख करते हुए सगुणाबाई थोड़ी-थोड़ी अंगरेजी बोलने और समझने लगीं।

इन्हीं सगुणाबाई ने एक दिन अपने मौसा गोविन्दराव से कहा, "आप चिंता न करें। ज्योतिबा का लालन-पालन मैं करूँगी।"

गोविन्दराव के तो मन की अभिलाषा पूरी हो गई। उन्होंने नन्हें जोतिबा को सगुणाबाई को सौंप दिया। सगुणाबाई ने जोतिबा को माँ-जैसा प्यार दिया। यों भी वे नन्हें शिशु की मौसेरी बहन भी थीं। स्वयं महात्मा फुले के शब्दों में—"माँ-जैसा दूसरा देवता नहीं लेकिन जिसने मुझे जन्म दिया, उसकी मुझे याद नहीं। मेरे जीवन की यह कमी सगुणाबाई ने पूरी की। उसकी कामना थी कि मैं बड़ा "फादर" बनूँ। न जाने क्यों वह मुझे ज्ञान-बोध कराती थी। बचपन में तो उसने ममता से मेरी सेवा-सुश्रुषा की। कभी न घटनेवाली ज्ञान-संपत्ति उसी ने मुझे दी। धन्य है मेरी आऊ।"

मिशनरी जॉन के बच्चों के साथ-साथ सगुणाबाई ने ज्योतिबा की भी देख-रेख की। ज्योतिबा का इन्हीं अंगरेज बच्चों के बीच विकास होने लगा।

गोविन्दराव का एक सपना था—ज्योतिबा खूब पढ़े-लिखे। समाज में अपना स्थान बनाए। अतः उन्होंने एक ब्राह्मण श्री विनायक राव जोशी को ज्योतिबा की शिक्षा का भार सौंपा। विनायक राव जोशी ने ज्योतिबा को पढ़ाना शुरू किया। पहले उन्होंने उन्हें मराठी में अक्षर ज्ञान कराया। फिर अन्य पुस्तकें पढ़ाईं।

ज्योतिबा मेधावी थे। मराठी के ज्ञान के साथ-साथ उन्होंने गणित भी सीख लिया था। गुरु जोशी चाहते थे कि ज्योतिबा को आगे की पढ़ाई के लिए "चर्च ऑव स्काटलैंड मिशन" के स्कूल में भर्ती करा दें। यह सन् 1833 की बात है।

लेकिन, ज्योतिबा स्कूल में अधिक समय नहीं पढ़ पाए। गोविन्दराव के अनेक परिचितों को ज्योतिबा का अंगरेजी स्कूल

में पढ़ना पसन्द नहीं था। उन्होंने गोविंदराव से कहा कि अंगरेजी पढ़कर ज्योतिबा बिगड़ जाएगा। फिर उसे अपना पैतृक व्यवसाय ही करना है—मालीगिरी का। फूल उगाने और बेचने का। ज्यादा पढ़ाई-लिखाई व्यर्थ सिद्ध होगी।

गोविन्दराव उलझन में पड़ गए। वे स्वयं तो चाहते थे कि बेटा पढ़े-लिखे। पर संबंधी, मित्र, परिचित ज्योतिबा के विद्याध्ययन के विरोधी थे। यही नहीं, उन्होंने गोविन्दराव को एक धमकी भी दी थी। यदि वे ज्योतिबा को पढ़ाएंगे तो उन्हें जाति-बिरादरी से निकाल दिया जाएगा।

इस धमकी के आगे गोविन्दराव विवश थे। एक दिन उन्होंने नौ वर्षीय ज्योतिबा को स्कूल से निकलवा लिया। अब ज्योतिबा का काम खेती में पिता का हाथ बँटाना था। वे उत्साह से इस काम में भी जुट गए। लेकिन उनका मन दुखी था, खिन्न था।

4

एक सपना ज्ञान प्राप्त करने का

ज्योतिबा को स्कूल से हटा लेने पर सगुणाबाई भी दुखी थीं। उन्होंने उन्हें पुत्र की भाँति पाला-पोसा था। उनका एक सपना था—ज्योतिबा पढ़े-लिखे। ईसाई फादर की भाँति समाज में आदर और सम्मान प्राप्त करे। पर वे कर भी क्या सकती थीं।

वर्ष बीतते चले गए। सगुणाबाई ने अपना सपना संजोकर ही नहीं रखा। वे उसे पूरा करने का प्रयत्न भी करने लगीं।

वे लिजिट साहब नामक एक ईसाई सज्जन से मिलीं। वे गोविन्दराव के एक परिचित मुंशी गफारबेग के मित्र भी थे। सगुणाबाई ने लिजिट साहब से प्रार्थना की कि वे मुंशीजी के साथ जाकर गोविन्दराव को समझाएँ। कहें कि वे ज्योतिबा को विद्याध्ययन से वंचित न रखें।

लिजिट साहब भी गोविन्दराव को जानते थे। गफारबेग मुंशी की बात तो गोविन्दराव कभी नहीं टालते थे। लिजिट साहब और गफारबेग मुंशी स्वयं ज्योतिबा से प्रभावित थे। उन्होंने देखा था, यह किशोर दिन भर खेतों में काम करता है। रात को लैंप के प्रकाश में पढ़ता है। उन्होंने गोविन्दराव को समझाने का निश्चय कर लिया।

एक दिन की बात है, गोविन्दराव अपने घर के सामने बाग में खुरपी लिये काम कर रहे थे। ज्योतिबा उनकी पीठ के पीछे खड़े थे। उन्होंने अपने पिता से अनुरोध किया—"दादा, मैं अंगरेजी पाठशाला में जाना चाहता हूँ।"

"यह पाठ तुझे किसने पढ़ाया, ज्योतिबा?" गोविन्दराव ने पूछा।

"किसी और ने नहीं, गफारबेग मुंशी ने ही मुझसे कहा कि तू अंगरेजी स्कूल में जा। देखो, मुंशीजी वहाँ खड़े हैं। उनसे पूछ लो।" ज्योतिबा ने उत्तर दिया।

गोविन्दराव ने बाग के द्वार की ओर देखा। वहाँ सचमुच गफारबेग मुंशी खड़े थे—हंसते हुए।

गोविन्दराव ने ज्योतिबा से कहा, "अरे बेटा, तू मराठी तो अच्छी तरह लिख लेता है। वही काफी है। है कि नहीं!"

"दादा, मेरी कक्षा के सारे ब्राह्मण छात्र अंगरेजी स्कूल में भर्ती हो गए हैं। सदाशिव गोवंडे, सखाराम परांजपे, मोरू वालवेकर..."

"ज्योतिबा, वे ब्राह्मण के बेटे हैं। उनका काम ही विद्या अर्जित करना है।" गोविन्दराव ने समझाने की कोशिश की।

"दादा, विद्या तो सभी को सीखनी चाहिए। मुझे अंगरेजी स्कूल जाने दो न!" ज्योतिबा ने फिर अनुरोध भरे स्वरों में कहा।

"पर बेटा, तू अंगरेजी पढ़कर क्या करेगा? क्या बाबू बनेगा? खुरपी छोड़कर कलम पकड़ेगा?" गोविन्दराव ने एक साथ कई प्रश्न कर डाले।

"दादा, नौकरी करने के लिए मैं अंगरेजी नहीं सीखना चाहता।"

"फिर?" गोविन्दराव ने पूछा।

"अंगरेजी पढ़कर मैं समझदार बनना चाहता हूँ।" ज्योतिबा ने उत्तर दिया।

"वाह बेटा, क्या, जो अंगरेजी नहीं जानते वे समझदार नहीं होते! देखो, तुम्हारे दादा तो मराठी लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते थे। फिर भी उन्होंने पेशवा के दरबार में कितना नाम कमाया।" गोविन्दराव ने बेटे को समझाने की कोशिश की।

र दादा, तब वहाँ अंगरेजों का राज्य नहीं था।" कहते
ाबा घर के भीतर चले गए।

ारबेग मुंशी पिता-पुत्र का वार्तालाप सुन रहे थे। वे
गोविन्दराव के पास आए। बोले, "गोविन्दराव, बच्चे
ात तोड़ो। वह होनहार है। उसे आगे पढ़ाओ।" इस
ारबेग मुंशी ने गोविन्दराव को बहुत समझाया। अंततः
ए।

नवरी 1843! ज्योतिबा मिशन स्कूल में फिर से जाने
ों बाद फिर से उन्होंने पढ़ाई शुरू की थी। वे कुशाग्र
उन्होंने शीघ्र ही पिछली पढ़ाई भी पूरी कर ली।

5

अध्ययन भी, व्यायाम भी

ज्योतिबा की एक नियमित दिनचर्या थी। वे बहुत तड़के उठते। स्नान करने के बाद व्यायाम में जुट जाते। सौ डेढ़ सौ दंड और बैठक लगाते। इसके बाद विद्याध्ययन में लग जाते। पढ़ाई करने के बाद वे बाग में पिता के साथ काम करते। फिर भोजन कर शाला की राह पकड़ते। कक्षा में गुरुजी जो भी पाठ पढ़ाते उसे ध्यान पूर्वक सुनते और पढ़ते। शाला से लौटने के बाद शाम को वे आसपास के बच्चों को एकत्र कर खेलते-कूदते। कभी खो-खो, कभी आट्या-पाट्या और कभी कुश्ती। ज्योतिबा जानते थे कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है।

ज्योतिबा के अनेक मित्र थे। इनमें सदाशिव गोवंडे नामक एक छात्र से उनकी गहरी मित्रता थी। सदाशिव एक निर्धन ब्राह्मण का पुत्र था। ज्योतिबा की भाँति वह भी मेधावी था। दोनों के बीच मित्रता का एक और कारण था। यह थी विचारों की समानता। ज्योतिबा और सदाशिव—दोनों के मन में देश के प्रति प्रेम था। वे दोनों दलितों और शोषितों की दयनीय दशा से दुखी थे। दोनों चाहते थे कि उनमें जागृति लाई जाए। दोनों पर एक पुस्तक ने अत्यधिक प्रभाव डाला था। यह पुस्तक एक महान विचारक थामस पेन की थी। इस पुस्तक का नाम था "मनुष्य के अधिकार।"

पुणे में उन दिनों मांग जाति के एक देशभक्त रहा करते थे। उनका नाम था लहुजीबुआ। सभी लोग उन्हें "गुरुजी" संबोधन

कर आदर देते थे। लहुजीबुआ युवकों को तलवार-भाला और पटा चलाना सिखाते थे। वे उनमें देश-प्रेम की भावना भी जगाते। इन्हीं लहुजी बुआ के शिष्य थे, प्रसिद्ध क्रांतिकारी वासुदेव बलवंत फड़के। उन्होंने महाराष्ट्र में अंगरेज शासकों के खिलाफ सशस्त्र क्रांति करने का प्रयत्न किया था। ज्योतिबा ऐसे क्रांतिकारियों के गुरु लहुजी बुआ के शिष्य थे।

उन दिनों पुणे में दो तरह के विचारों के लोग थे। एक थे, धर्म और रूढ़ियों में बंधे हुए। वे स्वयं को श्रेष्ठ तथा निम्नजाति के लोगों को अछूत समझते थे। दूसरे वे जो आधुनिक विचारों से प्रभावित थे। इनमें अनेक ब्राह्मण भी थे। अपने कट्टर दृष्टिकोण के कारण रूढ़िवादी लोग, आधुनिक विचारों के लोगों को हेय समझते थे। उनकी दृष्टि में मिशन स्कूल में पढ़ना पाप और धार्मिक अपराध था। अपने धर्म से भ्रष्ट होने-जैसा था, आदि-आदि। पर नए विचारों वाले लोगों को उनके विरोध की तनिक भी परवाह नहीं थी। ऐसे युवकों में अनेक प्रतिभा संपन्न ब्राह्मण छात्र भी थे। लेकिन वे निर्धन थे। वे अछूत समझे जाने वाले युवकों से मिलते-जुलते थे। उनसे गहरी मित्रता रखते थे।

6

अंतर कथनी और करनी का

ज्योतिबा फुले के कई ब्राह्मण मित्र भी थे—उनमें दो के साथ उनकी बड़ी मित्रता थी—इनके नाम थे सखाराम यशवंत परांजपे और मेरो विट्ठल वल्वेकर। इस मित्रमंडली को क्रांति से लगाव था। वे अंग्रेजों को देश से बाहर करना चाहते थे। ये मित्र विदेशी क्रांतिकारी विचारकों की पुस्तकें पढ़ते। उनके आदर्शों और उनके विचारों पर चिन्तन और मनन करते।

एक रात की बात है, ज्योतिबा गुरु लहुजी बुआ के साथ उनके घर लौट रहे थे। उनके संग गोवंडे और परांजपे भी थे। वे एक पहाड़ी पर तलवार-पटा चलाने का अभ्यास करने गए थे। राह में ज्योतिबा ने लहुजीबुआ से जॉर्ज वाशिंगटन की जीवनी पढ़ने के लिए मांगी। वे बोले, "घर चलकर ले लो।"

गुरुजी के घर के पास पहुंचकर परांजपे और गोवंडे ने उनसे विदा ले ली। ज्योतिबा को पुस्तक लेने लहुजीबुआ के साथ जाना था।

घर के पास पहुंचकर लहुजीबुआ ने पुकार कर कहा, "'यमू', जरा मेरी पुस्तकों का थैला तो लाना।"

कुछ ही पलों में एक दस बरस की लड़की पुस्तकों का थैला लेकर बाहर आई। उसका सिर घुटा हुआ था।

ज्योतिबा के हृदय को आघात पहुंचा। इतनी छोटी-सी बालिका और विधवा!

उन्होंने पूछा, "गुरुजी, यह कौन है?"

"यह मेरी बेटी यमू है। विवाह के दस दिन बाद ही इसका पति नहीं रहा।"

"दस दिन नहीं बाबा, आठ दिन।" यमू ने सहज भाव से पिता की बात काटी। पिता ने उसकी ओर घूरकर देखा।

तभी ज्योतिबा ने कहा, "गुरुजी, इसका दूसरा विवाह क्यों नहीं कर देते?"

"छि-छि" गुरुजी ने तत्काल घृणा से कहा, "दुबारा यह बात भूल से भी नहीं कहना।"

ज्योतिबा विचलित हो उठे। बोले, "पर गुरुजी ऐसा क्यों? इसके बाल?"

"विधवा है न। धर्म की आज्ञा के अनुसार विधवा केश नहीं रख सकती।" गुरुजी ने कहा।

"तब क्या हम इस धर्म को बदल नहीं सकते?" ज्योतिबा ने गंभीरता से पूछा।

"छि, छि, कहीं धर्म भी बदला जाता है!" गुरुजी ने उत्तर दिया।

"गुरुज़ी, जब हम अपना राज्य स्थापित कर लेंगे, तब भी धर्म नहीं बदला जाएगा।" ज्योतिबा ने पुनः पूछा।

"तब भी नहीं। धर्म कभी नहीं बदला जाएगा। उसे हम नहीं बदल सकते।" गुरुजी ने दो टूक उत्तर दिया। फिर जैसे उन्हें याद आया, "अरे, तुम्हें तो जॉर्ज वाशिंगटन की जीवनी चाहिए थी न? अभी देता हूँ।"

"नहीं गुरुजी, रहने दीजिए।" रुंधे कंठ से ज्योतिबा ने कहा और वे वहाँ से चल पड़े।

ज्योतिबा अपने पिता से कोई बात नहीं छिपाते थे। वे अपनी समस्याओं की उनसे चर्चा करते। उनके विचार सुनते। उनकी सलाह मानते।

घर आकर ज्योतिबा ने पिताजी से चर्चा की। उन्हें बताया कि अंगरेजों के खिलाफ सशस्त्र क्रांति करने की कोशिश की जा

रही है। उन्होंने भी क्रांतिकारियों की सूची में अपना नाम लिखा दिया है।

पिता अनुभवी थे। जानते थे कि केवल कुछ लोग अंगरेजों से नहीं लड़ सकते। अंगरेजों के पास संगठित सेना थी। पिता ने उन्हें समझाया। कहा कि सबसे पहले अपना अध्ययन पूर्ण करो। ज्योतिबा को यह बात जंच गई । उन्होंने पिता की सलाह मान ली।

अध्ययन समाप्त कर वे शाला से निकले। इस समय उनकी अवस्था इक्कीस वर्ष थी। ज्योतिबा ने महापुरुषों के चरित्रों का अध्ययन किया था। उन्होंने तुकाराम की गाथा, एकनाथ की भागवत, ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी को भी पढ़ा। गीता, उपनिषद, पुराणों–जैसे धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन किया। ज्योतिबा ने पश्चिमी देशों के विचारकों के भी ग्रंथ पढ़े। मिल, स्पेंसर, थामस पेन आदि दार्शनिको के विचारों का भी उन पर प्रभाव पड़ा।

ज्योतिबा ने एक बात अनुभव की। लोग कहते कुछ थे, और करते कुछ थे। उनकी कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर था। उन्होंने देखा, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर अत्याचार किए जाते हैं। ऊँच-नीच का भेद, छुआछूत का विचार, समाज में सब जगह व्याप्त है। इससे बहुत सारे लोगों का जीवन दुखी है, कष्टों से भरा हुआ है। ज्योतिबा दिन-रात इन्हीं बातों पर विचार करते। इन समस्याओं को कैसे हल किया जाए, यह सोचते।

7

एक अनुभव अपमानजनक

ज्योतिबा के एक मित्र थे सखाराम। वे ब्राह्मण थे। उनके भाई का विवाह था। सखाराम ने ज्योतिबा को भी विवाह में निमंत्रित किया। मित्र के भाई का विवाह था। ज्योतिबा भी गए।

वरयात्रा का समय। चारों ओर हर्ष का वातावरण। अच्छी, सुंदर वेशभूषा में बाराती।

तभी एक बाराती की दृष्टि ज्योतिबा पर पड़ी। वह क्रोध से चीख उठा—"अरे वरयात्रा में ये कहाँ से आ गया? निकालो इसे बाहर।"

अब तो चारों ओर शोर मच गया।

ज्योतिबा का शरीर अपमान से जल उठा। लेकिन मित्र के भाई की बारात थी। आनंद के अवसर पर वे कोई अप्रिय घटना नहीं घटने देना चाहते थे। वे चुपचाप अपने घर लौट आए। पर रात भर उन्हें यह अपमान सालता रहा। अपने अपमान से अधिक, इस बात का विचार कि मनुष्य-मनुष्य के बीच यह भेद क्यों? ऊँच-नीच, छुआछूत का विचार क्यों?

घर आकर ज्योतिबा ने पिता को सारी घटना कह सुनाई। पिता के लिए यह कोई नया अनुभव नहीं था। पिता ने कहा, "बेटा, ये लोग दुष्ट हैं। उनसे लड़ना कठिन है। उनके विरोध का विचार छोड़ दे।"

लेकिन ज्योतिबा नई पीढ़ी के थे। चुपचाप बैठना उन्हें स्वीकार नहीं था। वे सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष से मुंह

मोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने संकल्प किया कि वे इन बुराइयों का सामना करेंगे। उन्हें दूर करने और मिटाने में जी-जान से जुटेंगे।

वरयात्रा में हुई घटना ने ज्योतिबा के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन किया।

ज्योतिबा ने अनुभव किया, बिना शिक्षा प्रसार के बहुजन समाज में चेतना नहीं आएगी। वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हो पाएँगे। बहुजन समाज अर्थात् वे लोग जिन्हें तब अछूत और निम्नजाति का माना जाता था।

ज्योतिबा कहते हैं—

विद्या बिना मती गेली
मती बिना नीती गेली
नीती बिना गती गेली
गती बिना वित गेले
विता बिना शुद्र खचले
इतने अनर्थ एक अविद्या ने केले

अर्थात्—विद्या के बिना मति गई । मति के बिना नीति का विचार गया। नीति के बिना गति गई। गति गई तो वित अर्थात् धन भी गया। वित के बिना शुद्र और एक अविद्या के कारण इतना अनर्थ हुआ।

एक और जगह वे कहते हैं—

विद्या शिकतांच पावाल तें सुख
ध्यावा माझा लेख जोति मृणे

अर्थात्—विद्या सीखने पर ही सुख मिलेगा। मेरे इस लेख पर ध्यान रखो। यह ज्योतिबा का कहना है।

8

शिक्षा के प्रचार-प्रसार की ललक

ज्योतिबा बहुजन समाज में शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे। पर कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अचानक एक घटना घटी और ज्योतिबा को नया रास्ता दिखाई दे गया।

ज्योतिबा के एक घनिष्ठ मित्र थे—सदाशिव गोवंडे। शिक्षा पूरी करने के बाद सदाशिव इनाम कमीशन में काम करने लगे थे। उनका तबादला अहमदनगर हो गया था। वहाँ वे जज के कार्यालय में कार्य करते थे। एक दिन ज्योतिबा मित्र से मिलने गए। उन दिनों अहमदनगर में अनेक मिशनरी स्कूल थे। वहाँ अमरीकन मिशन की ओर से कन्या पाठशालाएँ थीं। कुमारी फर्रार नामक एक स्वयं सेविका इन स्कूलों की देख-रेख करती थीं। ज्योतिबा उन स्कूलों को देखने गये। वे सदाशिव के साथ कमारी फर्रार से भी मिले। कुमारी फर्रार ने दोनों मित्रों को प्रतिभावान पाया। देखा कि वे कुछ करना चाहते हैं। उन्होंने दोनों मित्रों से भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा के बारे में बात की। उन दिनों स्त्रियों की शिक्षा के बारे में कोई ध्यान नहीं देता था। शिक्षा के बिना स्त्रियों का मानसिक विकास नहीं हो पाता था। कुमारी फर्रार ने ज्योतिबा को नारी शिक्षा का महत्व समझाया।

कुमारी फर्रार के विचारों से ज्योतिबा बहुत प्रभावित हुए। मन ही मन उन्होंने एक संकल्प भी कर लिया। उन्होंने निश्चय किया कि वे पूना में स्त्रियों के लिए एक पाठशाला स्थापित करेंगे।

1 जनवरी, सन् 1848! भारत में स्त्री-शिक्षा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण तिथि।

ज्योतिबा ने इसी दिन पुणे में लड़कियों के लिए एक पाठशाला खोली। यह शाला तात्या साहब भिडे नामक एक सज्जन की हवेली में खोली गई। तात्या साहब ब्राह्मण थे, परोपकारी स्वभाव के, उनके मन में सबके प्रति दया थी, ममता थी, वे उदार हृदय के व्यक्ति थे। वे भी स्त्री शिक्षा के महत्व को समझते थे। स्त्री-शिक्षा को वे पुण्य का कार्य समझते थे। उन्होंने कन्या पाठशाला के लिए अपनी हवेली खुशी-खुशी दे दी। कोई किराया भी नहीं लिया। यही नहीं, पाठशाला शुरू करने के लिए उन्होंने ज्योतिबा को एक सौ एक रुपये भी दिए और प्रतिमास पाँच रुपये चंदा देने का वचन दिया। उन दिनों पाँच रुपये की बड़ी कीमत थी। अब समस्या थी, इस पाठशाला के लिए छात्राओं की। ज्योतिबा ने अपनी पत्नी सावित्री देवी फुले का छात्रा के रूप में नाम लिखाया। वे शाला की पहली छात्रा थीं। उसके बाद ज्योतिबा ने अपने मित्रों से बात की। उनसे अपनी

स्कूल जो ज्योतिबा फुले ने शुरू किया



बेटियों को पाठशाला में भेजने का अनुरोध किया। फलतः पाठशाला में छह लड़कियों ने आना शुरू किया। इन छह लड़कियों में से चार ब्राह्मण परिवार से थीं। एक गड़रिया और एक मराठा जाति की थी।

शुरू-शुरू में तो इन लड़कियों के अभिभावक उन्हें पाठशाला में भेजने से डरते थे। इसका कारण भी था। ज्योतिबा की इस पाठशाला का विरोध शुरू हो गया था। विरोध करने वाले कुछ ब्राह्मण ही थे। वे इसे धर्मविरोधी कार्य मानते थे। पर ज्योतिबा ने इन लड़कियों के अभिभावकों को समझाया। उन्हें स्त्री-शिक्षा का महत्व बताया और वे मान गए। अपनी बेटियों को स्कूल में भेजने लगे।

9

विरोध की परवाह नहीं

ज्योतिबा की सहायता करने वाले कम लोग थे और विरोधी अधिक। ऐसे विरोधी पुरातनवादी थे। उन्होंने ज्योतिबा पर तरह-तरह के आरोप लगाए।

कहा गया फुले षड्यंत्रकारी है। वह शूद्रों और दासों को विद्या पढ़ाकर उन्हें ब्राह्मणों के बराबर बैठा रहा है। और भी तरह-तरह के आरोप लगाए।

पर ऐसे आरोप लगाने वाले लोग भी विवश थे। उनका लालन-पालन ऐसे ही वातावरण में हुआ था। उन दिनों धर्म की यही व्याख्या की जाती थी। उन सबके संस्कार ही ऐसे थे। लेकिन ज्योतिबा ने अपना कार्य जारी रखा।

शाला खुल गई। छात्राएँ भी आ गईं। उनकी संख्या भी बढ़ने लगी। अकेले ज्योतिबा उन सबको नहीं पढ़ा सकते थे। और शिक्षकों की भी जरूरत थी। अत: ज्योतिबा ने अपनी पत्नी सावित्री देवी को पहले से ज्यादा पढ़ाना शुरू किया। तीन वर्षों तक ज्योतिबा ने सावित्री देवी को घर पर भी पढ़ाया।

ज्योतिबा के पिता गोविंदराव को कई संबंधियों और मित्रों ने डराया-धमकाया। कहा, "तुम्हारी बहू पढ़-लिखकर औरों को पढ़ाएगी। ये गलत बात है। या तो तुम ज्योतिबा से कहकर शाला बंद करवाओ या फिर उसे घर से निकाल दो। नहीं तो हम तुम्हें जाति से निकाल देंगे। फिर तुम्हारी चालीस पीढ़ियाँ नर्क में जाएँगी। तुम्हारी भी यही गति होगी।"

बेचारे गोविंदराव क्या करते? उन्होंने ज्योतिबा और सावित्री बाई को यह बात बता दी। फिर भयभीत मन से चेतावनी दी, "या तो शाला बंद करो या फिर घर से बाहर निकल जाओ।"

ज्योतिबा चिंतित हो उठे। एक ओर पिता की आज्ञा। पिता से उनका प्रेम! दूसरी ओर सामाजिक जागरण का लक्ष्य। उन्होंने सोचा, सिद्धांतों के लिए घर से भी बाहर निकलना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। उन्होंने पिता से कहा, "मुझे घर से निकलना स्वीकार है पर मैं शाला बंद नहीं कर सकता।

ज्योतिबा ने तो निर्णय कर लिया, पर सावित्री देवी! वे स्त्री थीं। ससुर का घर छोड़कर कैसे जाएँ। ज्योतिबा ने भी उन पर दबाव नहीं डाला। बस यही कहा, "तुम्हारा मन जैसा कहे, वैसा ही करो।"

सावित्री बाई दुविधा में पड़ गईं। अंत में उन्होंने भी निर्णय कर लिया। वे पति के कार्यों में हाथ बटाएँगी। उनका साथ निभाएँगी।

इस तरह एक दिन पति-पत्नी ने घर छोड़ दिया।

अब ज्योतिबा पुणे के गंजपेठ क्षेत्र में रहने लगे। आजीविका के लिए भी कुछ करना आवश्यक था। अतः ज्योतिबा ने ठेके लेने का कार्य शुरू किया। वे इमारतें-सड़कें बनाने का ठेका लेने लगे। साथ ही शाला में पढ़ाते भी रहते।

ज्योतिबा और सावित्रीबाई की लगन देखकर कई लोगों को प्रेरणा मिली। पर कुछ ऐसे पुरातनवादी भी थे, जो अभी भी उनका विरोध करते थे।

सावित्रीबाई को ज्यादा परेशानी झेलनी पड़ती थी। जब वे अध्यापन के लिए शाला जातीं तो कुछ लोग उनका उपहास करते। अपशब्द कहते। मिट्टी और धूल फेंकते। तरह-तरह के आक्षेप लगाए जाते। तब वे मन में कहतीं, 'ईश्वर इन्हें क्षमा करना। ये नासमझ हैं। मैं तो अपने कर्तव्य का पालन कर रही हूँ।

शिक्षा का काम तो तुम्हारी, साक्षात ईश्वर की सेवा है।' फिर वे उन लोगों से कहतीं–''भाइयों, मैं तो आपकी छोटी-छोटी बहनों को पढ़ाने का काम करती हूँ। मुझे प्रोत्साहित करने के लिए ही आप मुझ पर ये फूल फेंक रहे हैं। ये गोबर या पत्थर नहीं है। मैं इन्हें फूल मानती हूँ। इससे तो मुझे अपनी बहनों को पढ़ाने का अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलता है। भगवान आपको सुखी रखे।''

सावित्रीबाई धुन की पक्की थीं। ऐसे लोगों के व्यवहार से वे जरा भी भयभीत नहीं हुईं। वे तीन साड़ियाँ रखतीं। एक घर से चलते वक्त पहनने के लिए। राह में कुछ लोगों द्वारा धूल-मिट्टी आदि फेंकने से उनकी साड़ी गंदी हो जाती। उसे वे शाला जाकर बदल लेतीं। जब बात बहुत बढ़ गई तो तात्या साहब ने एक बलिष्ठ व्यक्ति को सावित्री देवी के साथ कर दिया। इन लोगों के साथ बलवंत सखाराम कोंडे भी रहने लगे। अब किसी की हिम्मत नहीं होती कि उन्हें छेड़ता।

इन्हीं दिनों एक ब्राह्मण शिक्षक भी ज्योतिबा की शाला में पढ़ाने लगे। उनका नाम कत्रे था।

कुछ दिनों बाद ज्योतिबा ने एक और स्कूल खोल दिया। अब दो स्कूल थे–एक रास्तापेठ में, दूसरा बेतालपेठ में।

15 मई, सन् 1848 में ज्योतिबा ने पुणे के नानापेठ में एक और स्कूल खोला। इसमें लड़के-लड़कियाँ, दोनों एक साथ ज्ञानार्जन कर सकते थे। कहते हैं, भारत में अछूतों के लिए खोली गई यह प्रथम शाला थी। इस शाला में बच्चों को पढ़ाने का कार्यभार सगुणाबाई क्षीरसागर ने संभाला। बाद में सावित्रीबाई भी वहाँ पढ़ाने लगीं। धीरे-धीरे चार वर्षों में ज्योतिबा ने पुणे में अठारह शालाएँ खोलीं–ये शालाएँ उन वर्गों के लोगों के लिए थीं, जिन वर्गों के लिए सदियों से विद्या मंदिर के द्वार बंद थे।

10

हर व्यक्ति में प्रतिभा होती है। कुछ लोगों को उसे निखारने का अवसर मिल जाता है, कुछ लोगों को नहीं। पर जब उन्हें अवसर मिलता है, तो वे भी किसी से पीछे नहीं रहते।

21 मार्च 1852 की घटना है। पुणे के शुक्रवार पेठ में ज्योतिबा की शाला में बड़ा उत्साह था। छात्र मनोयोग से पढ़ रहे थे। आज उनकी परीक्षा होने वाली थी। परीक्षक थे, शिक्षा निरीक्षक (एज्यूकेशन इंस्पेक्टर) मेजर कैंडी। उन्होंने शाला के बच्चों की परीक्षा ली। कमजोर वर्ग के समझे जाने वाले छात्र, छुआछूत के शिकार, पर उनमें बुद्धि की कमी नहीं थी। बस, कमी थी तो अवसर की, पढ़ने की सुविधा की। ज्योतिबा ने उन्हें यह अवसर दिया था। यह सुविधा जुटाई थी। उनकी प्रतिभा निखर उठी थी। मेजर कैंडी ने उन सबकी परीक्षा ली। उनके ज्ञान से, उत्साह से, वे अत्यंत प्रभावित हुए। परीक्षा लेने के बाद वे बोले, ''ये बच्चे तो विश्रामबाग की शाला की ऊँची कक्षाओं में पढ़ने वाले कई बच्चों से भी अच्छे हैं। इनका लेखन शुद्ध है। पाठ का वाचन शुद्ध है।

ज्योतिबा ने क्रांतिकारी कार्य किया था। उनकी प्रशंसा भी होने लगी थी।

उन दिनों पुणे में ''ज्ञान प्रकाश'' नामक एक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ करता था। 5 दिसम्बर 1853 के अंक में उसमें एक संपादकीय छपा। उसमें कहा गया था– ''अपने नीच बंधुजनों को

अज्ञान के सागर से बाहर निकालकर उन्हें ज्ञानामृत का सेवन कराने में ज्योतिबा ने बहुत अधिक संकट झेले हैं। इस जाति पर उनका यह बहुत बड़ा उपकार है। हम भी उनका आभार मानते हैं।"

ज्योतिबा के इस विद्यादान के यज्ञ में और लोगों ने भी आहुति दी। कई अंगरेजों और कई मित्रों ने भी उन्हें सहायता दी। उन्हें दक्षिणा कोष से भी पचास रुपये मिलने लगे।

यह दक्षिणा कोष क्या था?

दक्षिणा कोष पेशवाओं ने आरंभ किया था। उसका भी एक इतिहास है।

प्राचीन काल से राजा और संपन्न नागरिक योग्य और बुद्धिमान पुरोहितों को दान दिया करते थे। यह दान एक तरह का पुरस्कार था। शैक्षणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्य करने वालों को यह दान दिया जाता था। धीरे-धीरे यह एक प्रथा बन गई। इसका उद्देश्य अच्छा था। पर इसका एक दुष्परिणाम भी हुआ। कुछ लोगों ने दान-दक्षिणा के सहारे ही जीवन चलाने की पद्धति अपना ली।

सन् 1674 में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। इस समय उन्होंने ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दी। प्रत्येक वर्ष श्रावण मास में वे ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते। बाद में शिवाजी के पुत्र संभाजी और राजाराम ने भी यह प्रथा आगे बढ़ाई। फिर बाजीराव प्रथम का समय आया। सेनापति उमाड़े को परास्त करने के बाद उसने भी दान-दक्षिणा देने के लिए अपना कोष खोल दिया। यह समाचार अन्य क्षेत्रों के ब्राह्मणों तक भी पहुंचा। वे भी दान-दक्षिणा लेने पुणे आने लगे।

बाद में अंगरेज आए। उन्होंने भी दक्षिणा कोष जारी रखा। पर उन्हें लगा, इसमें कहीं कोई गड़बड़ है। सन् 1840 में उन्होंने एक जाँच शुरू की। उसमें पता चला कि सूची में कई नाम जाली

हैं। पते भी झूठे हैं। कई लोग ऐसे भी थे, जो ब्राह्मण नहीं थे। लेकिन दान-दक्षिणा के लिए उन्होंने स्वयं को ब्राह्मण घोषित कर रखा था। इस जालसाजी में दक्षिणा कोष के कुछ संचालक भी शामिल थे। दक्षिणा कोष से वास्तविक विद्वानों को सहायता मिलना कठिन हो गया। यह कोष भ्रष्टाचार का शिकार हो गया।

ज्योतिबा के समय भी यह प्रथा जारी थी। पर वह मनमानी लूट का रास्ता बन गई थी। ज्योतिबा ने तो इस बुराई के खिलाफ संघर्ष करने का संकल्प किया था। उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। पुणे में और लोगों को भी यह बात कचोटती थी। इनमें कई ब्राह्मण भी थे। इनमें एक युवक था। लोक हितवादी। जून 1849 में उन्होंने इस प्रथा का खुलकर विरोध किया। कहा कि दक्षिणा कोष व्यर्थ की प्रथा है। इससे राजकोष का अपव्यय होता है।

लोक हितवादी ने एक सुझाव दिया। सुझाव यह था—सरकार को एक प्रार्थना पत्र दिया जाए। उसमें अनुरोध किया जाए कि सरकार इस कोष के कुछ धन से पारितोषिक दे। यह पारितोषिक प्रतिवर्ष मराठी में श्रेष्ठ पुस्तक की रचना के लिए या अनुवाद के लिए दिया जाए।

इस सुझाव के अनुसार हस्ताक्षर अभियान चलाया गया। उस पर अनेक महत्त्वपूर्ण लोगों ने हस्ताक्षर किए, इनमें सुधारवादी ब्राह्मण भी शामिल थे।

कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हें यह सुझाव पसंद नहीं था। इनमें एक थे विश्रामबाग शाला के प्रधानाध्यापक श्री बलराम किराद। अन्ना साहेब चिपलूणकर उनके पास हस्ताक्षर कराने गए तो उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने चिपलूणकर से प्रार्थना पत्र की एक प्रति भी माँगी। दोनों के बीच कहा-सुनी हो गई। वातावरण विषाक्त हो उठा। चिपलूणकर समझदार थे। उन्होंने बात बढ़ाना उचित नहीं समझा। वे मन ही मन भयभीत भी हो

उठे थे। कहीं लोग उन्हें अपशब्द न कह बैठें। उनके साथ मारपीट न करने लगें। वे तुरंत वहां से निकल पड़े। अपने मित्र केशवराव भवालकर के पास पहुँचे।

इधर विश्रामबाग शाला में उत्तेजना फैल गई। शाला के विद्यार्थी केशवराव भवालकर के निवास-स्थान पर भी पहुँच गए। उधर पुणे में एक अफवाह फैल गई। कहा गया कि कुछ अंगरेजी जानने वाले युवक षड्यंत्र कर रहे हैं। उनका उद्देश्य ब्राह्मणों का विनाश करना और हिंदू धर्म को कमजोर बनाना है।

अब क्या था। प्रार्थनापत्र के विरोधी संगठित हो गए। उन्होंने माँग की कि प्रार्थना पत्र उन्हें सौंपा जाए। ऐसा नहीं किया गया तो परिणाम अच्छा न होगा। अनर्थ हो जाएगा।

केशवराव भवालकर निर्भीक व्यक्ति थे। वे इस विरोध-प्रदर्शन से जरा भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने कहा, "मैं इस प्रार्थना पत्र की सारी जिम्मेदारी उठाने के लिए तैयार हूँ।"

पर आम लोगों में उन जैसा साहस नहीं था। उनका साथ देने के लिए कोई भी आगे नहीं आया।

इससे कट्टरपंथियों का साहस बढ़ा। उन्होंने एक समिति गठित कर डाली। समिति की ओर से घोषणा की गई कि यह प्रार्थना पत्र धर्मविरोधी है। इसे तैयार करने वालों और इसका समर्थन करनेवालों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। यही नहीं, उन्हें एक सार्वजनिक सभा में उत्तर देने के लिए भी बुलाया जाए। उन्होंने अगले ही दिन सभा आयोजित करने की भी घोषणा कर दी।

प्रार्थना पत्र के समर्थक बड़ी कठिनाई में पड़ गए। अब क्या करें? कौन बचाएगा उन्हें इस संकट से! सहसा किसी को ज्योतिबा का ध्यान आया। वे जानते थे, ज्योतिबा भी दक्षिणा कोष के विरोधी हैं। वे साहसी और दृढ़-निश्चयी भी हैं। कट्टरपंथियों से लोहा लेने का सामर्थ्य भी उनमें है। वे सब

ज्योतिबा के पास पहुँचे। ज्योतिबा ने उनकी बात ध्यान से सुनी। प्रार्थना पत्र तैयार करने वालों में उनके सहपाठी भी थे, घनिष्ठ मित्र भी थे। और फिर उनका उद्देश्य भी अच्छा था। पाखंड के खिलाफ था। भ्रष्टाचार के विरोध में था। ज्योतिबा ने कहा, ''चिंता न करो। सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लूँगा।''

फिर ज्योतिबा ने एक योजना बनाई। उसे केशवराव भवालकर को समझा दिया।

अगले दिन ही सभा होने वाली थी। ज्योतिबा ने अपने क्षेत्र के युवकों से बात की। उन्हें प्रार्थना पत्र का महत्त्व समझाया। बात की बात में दो सौ युवक ज्योतिबा का साथ देने के लिए आगे आ गए। वे सभी स्वस्थ थे, हृष्ट-पुष्ट थे। मारपीट की स्थिति में भागने वाले नहीं थे। ज्योतिबा ने पुणे के युवा बुद्धिजीवियों से भी बात की। वे समाज सेवकों और शिक्षित लोगों से भी मिले। अधिकारियों के समर्थन से भी काफी लोग आगे आ गए। अंगरेज अधिकारियों ने एक ब्राह्मण इंस्पेक्टर को बुलवाया और आदेश दिया कि देखो, सभा-स्थल पर कोई गड़बड़ी न होने पाए। जरूरत पड़े तो सख्ती से काम लो।

सभा हुई। दोनों पक्षों के लोग मैदान में आ डटे। एक पक्ष के नेता थे श्री बी.एन. रानाडे। उन्होंने सभा में प्रश्न किया, ''कौन यह ब्राह्मण-विरोधी कार्य कर रहा है? किसने सुझाव दिया है कि दक्षिणा कोष का धन लेखन और अनुवाद के लिए दिया जाए? इस प्रार्थना पत्र को लिखने वाला कौन व्यक्ति है?''

अभी श्री रानाडे ने अपने प्रश्न समाप्त भी नहीं किये थे कि श्री केशवराव भवालकर उठ खड़े हुए। ज्योतिबा ने उन्हें पहले ही समझा दिया था कि प्रश्न किए जाने पर क्या उत्तर देने हैं।

केशवराव भवालकर ने श्री रानाडे के प्रश्नों के उत्तर में केवल एक ही वाक्य कहा, केवल एक ही नाम बताया। उन्होंने कहा, ''ज्योतिबा फुले''।

ज्योतिबा फुले। सभा में एक फुसफुसाहट फैल गई। दक्षिणा कोष के समर्थकों ने ज्योतिबा की ओर देखा। उनके साथ खड़े युवा ब्राह्मणों को देखा। उनकी नजर दलित समाज के युवकों पर भी पड़ी। वे जानते थे कि ज्योतिबा ब्राह्मणों के शत्रु नहीं हैं। वे तो कुछ ब्राह्मणों के पाखंडवाद के विरोधी हैं। ज्योतिबा का विरोध करना उन्हें उचित नहीं लगा। वे सब चुप रहे। सभा बिना किसी विवाद के समाप्त हुई।

इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा। ज्योतिबा सामाजिक क्रांति के नेता माने जाने लगे।

11

नारी-शिक्षा : विदेशी शासकों द्वारा भी अभिनंदन

ज्योतिबा नारी-शिक्षा के आंदोलन का सब पर प्रभाव पड़ा था। अनेक अंगरेज अधिकारी उनके प्रशंसक भी हो गए थे। इनमें एक थे पूना संस्कृत कॉलेज के मेजर कैंडी। उन दिनों बंबई प्रांत में बोर्ड ऑफ एज्यूकेशन के प्रेसीडेंट थे सर एटस्किन पैरी। वे भी ज्योतिबा से प्रभावित थे। उनके कार्यों से प्रसन्न थे। सर पैरी कहते थे, जो कार्य सरकार को करना था, जिसे करने के लिए सरकार संकोच कर रही थी, उसे ज्योतिबा ने पूरा कर दिखाया। बंबई के ज्युडीशियल कमिश्नर तो स्थान-स्थान पर ज्योतिबा की सराहना करते हुए नहीं थकते थे। सर पैरी ने बंबई प्रांत की सरकार को एक सुझाव दिया। ज्योतिबा ने शिक्षा, विशेषकर स्त्री-शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनका सार्वजनिक अभिनंदन किया जाना चाहिए।

12 जून 1852 पुणे के एक समाचार पत्र में एक समाचार प्रकाशित हुआ। उसे पढ़कर कुछ लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। कुछ लोग बेहद दुखी, खिन्न और क्रोधित। यह समाचार क्या था--

समाचार था--

स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा द्वारा किए गए कार्यों से सरकार अत्यंत प्रभावित है। नारी-शिक्षा की दिशा में किए गए प्रयत्नों के लिए सरकार शीघ्र उन्हें सम्मानित और पुरस्कृत करने वाली है।

इस समाचार को पढ़कर पुणे के प्रगतिशील बुद्धिजीवी और ज्योतिबा के मित्र अत्यंत प्रसन्न हुए। दुखी वे हुए जो कट्टरपंथी थे। उन्होंने सोचा, एक दलित का अभिनंदन! ऐसे दलित का जिसका पिता अपढ़ है। जो मामूली माली है। पर वे कर भी क्या सकते थे?

16 नवम्बर 1852।

पुणे का विश्रामबाड़ा। पेशवाओं का विश्रामबाड़ा। जहाँ कभी दलितों का प्रवेश वर्जित था। इस विश्राम बाड़े में ज्योतिबा फुले का सरकार की ओर से अभिनंदन किया गया। मुख्य अतिथि थे, बंबई प्रांत के गवर्नर। इस अवसर पर अनेक अंगरेज दंपति, अन्य विदेशी और पुणे के संभ्रांत नागरिक भी उपस्थित थे। उस दिन विश्रामबाड़े में तीन हजार लोगों की भीड़ जमा थी।

समारोह शुरू हुआ। सरकार ने पुणे कॉलेज के मेजर कैंडी को अभिनंदन का भार सौंपा था। मेजर कैंडी ने सम्मानस्वरूप ज्योतिबा को एक शाल भेंट किया। उन दिनों उसकी कीमत दो सौ रुपये थी। वह एक कीमती शाल थी। अपने अभिनंदन-भाषण में मेजर कैंडी ने कहा, "शिक्षा बोर्ड, लंदन कोर्स और ब्रिटिश सरकार ज्योतिबा फुले की प्रशंसक है। उन्होंने निस्वार्थ भाव से नारी-शिक्षा के प्रसार के लिए कार्य किया है। उन्होंने इस दिशा में एक कीर्तिमान भी स्थापित किया है। सरकार और हम सब उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।"

समारोह में गवर्नर ने भी भाषण दिया। ज्योतिबा के अनेक मित्रों ने भी भाषण दिए। इनमें मोरेश्वर शास्त्री और बापू भांडे भी थे। उन्होंने ज्योतिबा के कार्यों पर और उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर प्रकाश डाला।

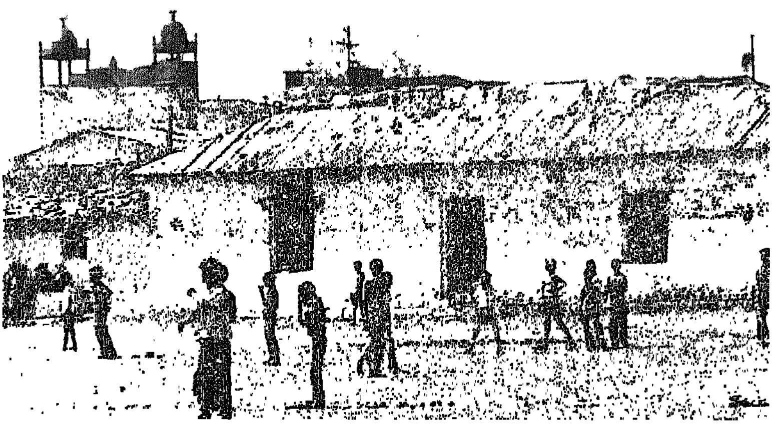
अंत में ज्योतिबा उत्तर देने के लिए खड़े हुए। गंभीर स्वरों में ज्योतिबा ने कहा, "मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैंने कोई विशेष कार्य किया है। मैंने तो अपना कर्तव्य मात्र निभाया है। मेरा

अनुरोध है कि यहाँ एकत्र जनता-जनार्दन आगे आए। सरकार भी नारी-शिक्षा के कार्य को तत्काल अपने हाथ में लेकर पूरा करे।"

ज्योतिबा ने कहा, "मैंने अपनी अंतरात्मा के अनुसार कार्य किया। मेरे लिए दीन-दलितों का कार्य ईश्वर की साधना से भी बढ़कर है। मैं अपने मित्रों का भी आभारी हूँ। उनके स्नेह से, अपार सहयोग से ही मैं यह कार्य, जो अत्यंत कठिन था, पूरा कर पाया।"

अगले दिन सारे समाचार पत्रों में ज्योतिबा के शासकीय अभिनंदन का समाचार प्रकाशित हुआ। सबने उनकी प्रशंसा भी की। ज्योतिबा के भाषण का असर हुआ। सरकार ने नारी-शिक्षा की दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिया। दक्षिणा कोष से ज्योतिबा की शाला के लिए प्रतिमास 75 रुपए देने की व्यवस्था की गई। ज्योतिबा ने ज्ञान की ज्योति जला दी थी। उनका एक लक्ष्य पूरा हुआ था। पर वह पर्याप्त नहीं था। समाज में और भी अनेक कुरीतियाँ थीं। उन्हें भी दूर करना था। ज्योतिबा ने अपनी शालाएँ सरकार को सौंप दीं। फिर उन्होंने अन्य क्षेत्रों की ओर अपना ध्यान लगाया। कौन से थे ये क्षेत्र?

स्कूल जो ज्योतिबा ने चलाये



12

शिक्षा : समाज सुधार की नींव

ज्योतिबा का विश्वास था--शिक्षा ही सामाजिक सुधार की नींव है।' और उन्होंने उसकी नींव डाल दी थी। उनका विश्वास था जब तक स्त्रियों और अछूतों की सर्वांगीण उन्नति नहीं होगी, तब तक समाज में सुधार नहीं हो पाएगा।

उन दिनों स्त्रियों पर तरह-तरह के प्रतिबंध थे। विधवा स्त्रियों द्वारा केश रखने का रिवाज नहीं था। उनका मुंडन करा दिया जाता था। दूसरा विवाह करने की बात तो स्वप्न में भी नहीं सोची जा सकती थी। ज्योतिबा ने विधवा-विवाह कराने का बीड़ा उठाया।

8 मार्च 1860 को उन्होंने गोखले बाग में एक विधवा-विवाह कराया। वर-वधू शणयी जाति के थे। इसका भी कम विरोध नहीं हुआ। ज्योतिबा आलोचनाओं से घबराए नहीं। विधवाओं के पुन: विवाह के बारे में उन्होंने सार्वजनिक रूप में लिखा– "जब किसी स्त्री का पति मर जाता है तो उस स्त्री को दु:ख के सागर में डूब कर अत्यधिक संकट उठाने पड़ते हैं। अपनी मृत्यु पर्यन्त उसे विधवा-जीवन बिताना पड़ता है। यही नहीं, पहले तो उसे सती भी होना पड़ता था। पर कभी यह सुना है कि कोई पुरुष अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरांत "सती" हुआ है? वह चाहे जितने विवाह कर सकता है। पर स्त्रियों की स्थिति ऐसी नहीं है।"

ज्योतिबा कहते थे, "विधवाओं का फिर से विवाह कराना

एक सामाजिक दायित्व है। समाज को आगे आकर यह करना चाहिए। उसे विधवाओं का सम्मान करना चाहिए। अपनाना चाहिए। उसे आश्रय देना चाहिए। उन्होंने सिद्ध किया कि हिंदू धर्मग्रंथों में विधवाओं के पुन: विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं है।"

ज्योतिबा ने एक और क्रांतिकारी कार्य किया। उन्होंने एक प्रसूतिगृह और बालहत्या प्रतिबंधक संस्था की भी स्थापना की।

इसकी भी एक कहानी है।

एक दिन की बात है। ज्योतिबा ने देखा कि एक विधवा युवती आत्महत्या की कोशिश कर रही है। उन्होंने उसे बचाया। वे उसे घर लेकर आए। वह युवती ब्राह्मण थी। उसका नाम था काशीबाई। वह माँ बनने वाली थी। वह विधवा थी। माँ बन जाती तो लोग उसका जीना मुश्किल कर देते। समाज के भय से उसने आत्महत्या करने की ठानी।

ज्योतिबा ने उसकी पूरी कहानी सुनी। फिर बोले, "तुम चिंता मत करो। हमारे घर चलो।"

काशीबाई गंजपेठ के केसोपंत सिंदी नामक एक व्यक्ति के घर रहती थी। ज्योतिबा के समझाने-बुझाने पर उसने आत्महत्या का विचार त्याग दिया। बाद में उसने एक शिशु को जन्म दिया। प्रसव के दौरान सावित्रीबाई ने बड़ी सहायता की। बाद में बड़ी धूमधाम से उस शिशु का नामकरण संस्कार हुआ। ज्योतिबा और सावित्रीबाई ने शिशु का नाम रखा यशवंत। बाद में सावित्रीबाई ने ही उस शिशु का लालन-पालन किया। उन्होंने उसे अपना बेटा ही मान लिया। वह यशवंत फुले कहलाने लगा। बाद में वह एक डॉक्टर बना।

ज्योतिबा की बाल हत्या प्रतिबंधक संस्था को और लोगों ने भी सहायता दी। ये सब सुधारवादी थे। उन दिनों "ज्ञान प्रकाश" नामक एक समाचार पत्र छपता था। उसके फरवरी 1871 के अंक में एक सूचना छपी। उसमें कहा गया था कि एक परोपकारी सज्जन ने गर्भवती स्त्रियों और बच्चों की सहायता के लिए, उन्हें

आश्रय देने के लिए एक संस्था बनाई है।

उन दिनों बाल-विवाह की प्रथा थी। बचपन में ही बच्चों की शादी कर दी जाती थी। बहुधा लड़कों की बचपन में ही मृत्यु हो जाती। तब उसकी बालिका-पत्नी को विधवाओं जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ता। उसके केश काट दिए जाते। सिर मुंडा दिया जाता।

ज्योतिबा ने इसका विरोध किया। उन्होंने नगर के नाई समाज को संगठित किया। विधवाओं के केश न काटने के लिए उन्हें समझाया।

ज्योतिबा किसी एक व्यक्ति द्वारा दो पत्नियाँ रखने के भी विरोधी थे। स्वयं उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। सावित्रीबाई के कहने पर भी।

हुआ यह था कि सावित्रीबाई के कोई संतान नहीं हुई थी। वे चाहती थीं कि ज्योतिबा दूसरा विवाह कर लें ताकि उनका वंश चले। पर ज्योतिबा ने उनकी बात भी नहीं मानी।

''सार्वजनिक सत्य धर्म'' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है—

कुछ लोभी पुरुष ज्यादा सुख की लालसा में या अपनी इच्छा पूरी करने के लिए दो-दो, तीन-तीन पत्नियाँ रखते हैं। इसके लिए कुछ दुराग्रही पुरुष धर्मग्रन्थों का भी हवाला देते हैं। पर यदि इसी आधार पर स्त्रियां भी अपनी इच्छा की तृप्ति के लिए दो-दो, तीन-तीन विवाह करें तो पुरुषों को कैसा लगेगा? क्या उन्हें वह शास्त्र-विरोधी नहीं लगेगा?

13

उन दिनों छुआछूत का बड़ा जोर था। अछूतों को सार्वजनिक कुएँ से पानी नहीं भरने दिया जाता था। ज्योतिबा ने इस प्रथा का भी विरोध किया। उन्होंने अपने घर के कुएं को सबके लिए खोल दिया। यह सन् 1868 की बात है। ज्योतिबा ने अछूत समझे जाने वाले लोगों से कहा कि वे भी उनके कुएँ से पानी भर सकते हैं। पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वे भयभीत भी थे कि कैसे पानी भरें। अतः ज्योतिबा ने स्वयं उनकी गागरें भरीं और उनके सिरों पर रखीं। तभी उन्हें विश्वास हुआ कि ज्योतिबा सचमुच चाहते हैं कि वे सब उनके कुएँ से पानी भरें।

ज्योतिबा छुआछूत दूर करना चाहते थे। सन् 1873 में उन्होंने एक विज्ञापन प्रकाशित करवाया। इस विज्ञापन में कहा गया था कि--

"यदि कोई शूद्र अथवा किसी भी धर्म का व्यक्ति नीति अनुसार स्वच्छ उद्योगधंधा शुरू करना चाहता है और वैसा ही आचरण करता है तथा मुझे उस पर विश्वास हो जाता है तो मैं उसे अपने कुटुंब का व्यक्ति समझ कर उसके साथ अन्न-व्यवहार रखूंगा। फिर वह भले ही किसी भी देश का क्यों न हो।"

ज्योतिबा अपने विचारों पर दृढ़ता से अमल करते थे।

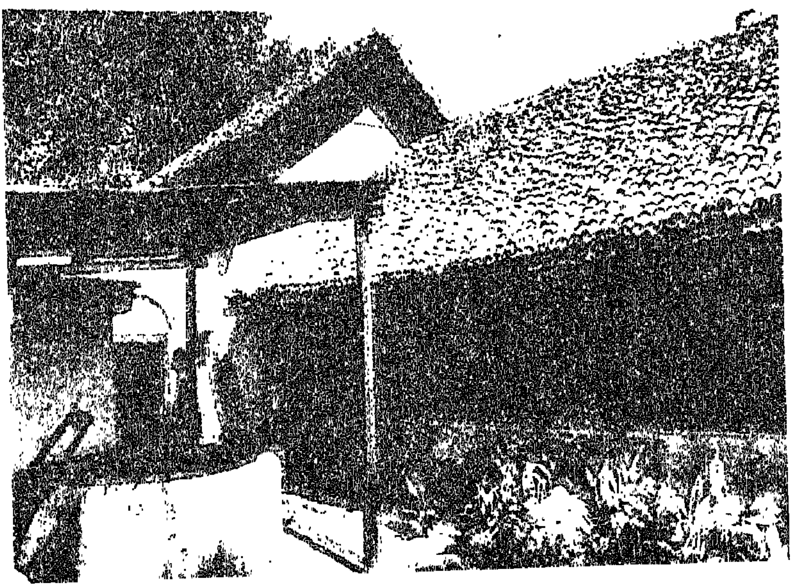
सन् 1864 की घटना है। उनके पिता श्री गोविंदराव का देहांत हो गया। पिता की मृत्यु से ज्योतिबा की बहुत आर्थिक हानि हुई। उनकी पैतृक संपत्ति पर औरों ने कब्जा कर लिया। इस

विवाद का जन्म तो गोविंदराव की मृत्यु के बाद ही हो गया था। दाह-संस्कार के बाद उनके भाई ने और किसी संस्कार में भाग नहीं लिया।

ज्योतिबा कब किसी की चिंता करने वाले थे। उन्होंने पिता के श्राद्ध दिवस पर कोई धार्मिक विधि नहीं की, न संबंधियों को भोजन के लिए बुलवाया। इसकी बजाय उन्होंने भिखारियों को भोजन कराया। गरीब और हरिजन छात्रों को पट्टी, पेंसिलें और पुस्तकें बाँटी। फिर तो प्रतिवर्ष पिता के श्राद्ध दिवस पर वे ऐसा ही करते।

सन् 1876 में ज्योतिबा पुणे नगरपालिका के सदस्य बने। अब से समाज-सुधार का कार्य और अच्छी तरह कर सकते थे। उन्होंने देखा था कि पिछड़े और अछूत समझे जाने वाले लोगों का जीवन कष्टमय है। उन्हें पीने के लिए पानी तक नहीं मिल पाता। अतः उन्होंने इन लोगों के लिए पेयजल की व्यवस्था करने की मांग की। उन्होंने इन लोगों को और सुविधाएँ देने की भी मांग

ज्योतिबा फुले का कुआं



की। पर कभी-कभी राजनीति के कारण उनके सुझाव स्वीकार भी नहीं किए जाते थे।

सितम्बर 1879 की बात है। ज्योतिबा ने नगरपालिका में एक प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव में कहा गया था कि बुधवार बाड़े के सार्वजनिक पुस्तकालय के जले हुए कमरे पुनः बनवा दिए जाएँ। ये कमरे एक सशस्त्र क्रांति के प्रयत्न के दौरान जल गए थे। क्रांति करने वाले थे वासुदेव बलवंत फड़के।

फड़के एक तरह से ज्योतिबा के गुरुभाई थे। ज्योतिबा की भांति उन्होंने भी लहुजीबुआ से शस्त्र विद्या सीखी थी। उन्होंने एक सेना बनाई थी। अंग्रेजों से लोहा लिया था। वे सफल नहीं हो पाए पर आज सारा देश शहीदों के रूप में उन्हें पूजता है। उन्हीं की क्रांति के दौरान सार्वजनिक पुस्तकालय के कमरे जल गए थे। अंगरेज जानते थे कि जले कमरे फिर से बनवाना ठीक नहीं रहेगा। लोग वहाँ जाएंगे तो उन्हें वासुदेव बलवंत फड़के की, उनके साथियों की, उनकी क्रांति की याद आएगी। पर वे ऐसा साफ-साफ कह भी नहीं सकते थे। उन्होंने बहाना बनाया कि बुधवारवाड़ा में पुस्तकालय नहीं बनवाया जा सकता। वहाँ सफाई की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार ज्योतिबा का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

ज्योतिबा हमेशा सार्वजनिक हित को प्रधानता देते थे। वे सार्वजनिक हित के लिए मतभेद भूल जाते थे। विरोधियों के प्रस्ताव का भी समर्थन करते। नगरपालिका के एक सदस्य थे हरिराव चिपलूणकर। उन्होंने सुझाव रखा कि वर्ष के प्रारंभ में ही सदस्य सामूहिक रूप से प्रबंध समिति गठित किया करें। ज्योतिबा ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। ज्योतिबा ने हमेशा अपव्यय का विरोध किया। उनका सुझाव था कि नगरपालिका की आमसभा की सहमति के बिना एक पैसा भी खर्च न किया जाए। एक बार हरिराव चिपलूणकर ने प्रस्ताव रखा कि पुणे में एक नया सब्जी

बाजार बनाया जाए। ज्योतिबा ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। साथ ही यह भी सुझाव दिया कि ऐसी दुकान का किराया प्रतिमाह चार आने से अधिक नहीं होना चाहिए। बाद में बिट्ठल पेठ में यह बाजार बनाया गया।

ज्योतिबा जिस प्रस्ताव को ठीक नहीं समझते, उसका डटकर विरोध भी करते। सन् 1880 की बात है। पुणे में सरकार ने निर्णय किया कि नगर में शराब की और दुकानें खोली जाएँ। ज्योतिबा ने इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया।

30 नवम्बर1880 की बात है। पुणे नगरपालिका में एक प्रस्ताव रखा गया। इसमें कहा गया कि वायसराय पुणे पधार रहे हैं। अतः उनके स्वागत के लिए सजावट हेतु एक हजार रुपये स्वीकार किये जाएँ।

ज्योतिबा ने इस प्रस्ताव का प्रबल विरोध किया। कहा कि यह फिजूलखर्ची है। अच्छा होगा, यदि यह राशि गरीबों की शिक्षा के काम में लाई जाए।

पुणे नगरपालिका में एक बार यह सुझाव दिया गया कि पुणे में सवा तीन लाख रुपये की लागत से एक बाजार बनवाया जाए। ज्योतिबा ने सुझाव दिया कि यह सारी धनराशि गरीबों और दलितों में शिक्षा-प्रसार के लिए व्यय की जाए। उनका सुझाव न माना गया तो ज्योतिबा ने एक और सुझाव दिया। उन्होंने कहा, "बाजार के लिए इमारत कम से कम रुपयों में बनाई जाए। बाजार में दुकानें कम किराए में गरीब दुकानदारों को दी जाएँ।"

अंततः इमारत के लिए सवा तीन लाख की बजाय दो लाख रुपये मंजूर किए गए। ज्योतिबा ने जोर देकर कहा कि शेष राशि दलितों की शिक्षा पर व्यय की जाए।

नगरपालिका के अधिकारी चाहते थे कि इस इमारत का नाम एक अंगरेज गवर्नर के नाम पर रखा जाए। ज्योतिबा ने इसका विरोध किया।

आज यह बाजार फुले मार्केट के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् 1882 में नगरपालिका का कार्यकाल समाप्त हो गया। सन् 1883 में नये चुनाव होने लगे। लोगों ने ज्योतिबा से कहा कि वे पुन: सदस्यता के लिए चुनाव लड़ें। ज्योतिबा ने इससे इन्कार कर दिया। वे कुछ और बड़ा कार्य करना चाहते थे।

14

गरीब मजदूरों और किसानों की सहायता

ज्योतिबा ने स्त्रियों और दलितों में शिक्षा-प्रसार का कार्य शुरू किया, पर उनका ध्यान समाज के अन्य लोगों पर भी था। उन्होंने विधवाओं के सुखी जीवन के लिए भी कार्य किया। उनका ध्यान गरीब मजदूरों और किसानों पर भी गया।

ज्योतिबा ठेकेदारी भी करते थे। उन्हें एक बड़ा ठेका भी मिला। इन दिनों खड़कवासला तालाब का काम चल रहा था। इस तालाब के लिए पत्थरों की पूर्ति का ठेका ज्योतिबा को मिला। इस कार्य में ममाणे और परांजपे नामक दो लोगों ने भी उनकी सहायता की। इस काम के दौरान उन्होंने मजदूरों की दीनदशा देखी। उन्होंने उनके बीच शिक्षा-प्रसार का कार्य शुरू किया। उन्हें संगठित होकर कार्य करने के लाभ समझाए।

कुछ समय बाद यरवदा पुल का कार्य शुरू हुआ। ज्योतिबा को चूने की पूर्ति का ठेका मिला। और भी कई ठेकेदार थे। वे मजदूरों का खूब शोषण करते थे। इंजीनियरिंग विभाग के लोग भी इन भ्रष्ट ठेकेदारों से मिले हुए थे। ज्योतिबा ने मजदूरों का पक्ष लिया। उन्हें संगठित किया। अन्याय-अत्याचार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया।

मजदूरों की भाँति गरीब किसान भी दुखी थे। ज्योतिबा का ध्यान उनकी ओर भी गया। वे ऐसे गरीब किसानों से मिलते।

उनका मार्गदर्शन करते। वे गाँव-गाँव जाते। और उनमें जागृति की भावना भरते।

सन् 1885 में ज्योतिबा ने एक चित्र बनवाया। उसकी हजारों प्रतियाँ गरीब किसानों में बंटवाई।

इस चित्र में क्या अंकित था?

इस चित्र का नाम रखा गया था--

''सुधारणे चे झाड़'' अर्थात सुधार का वृक्ष।

चित्र में एक किसान बना था। उसके सिर पर एक वृक्ष उगा था। इस वृक्ष में साग-सब्जी और फल उगे थे। ये फल केवल भट्ट (ब्राह्मण) सेठ (साहूकार) और सत्ताधारी खाते दिखाए गए थे। उनके बोझ से किसान दबा जा रहा था।

यह एक व्यंग्य चित्र था। गरीब किसानों पर इसका अच्छा असर पड़ा।

उन दिनों सरकार किसानों से ''लोकल फंड'' भी लेती थी। पर इस राशि से किसानों को कोई लाभ नहीं होता था। ज्योतिबा ने इस फंड का भी विरोध किया।

ज्योतिबा का ध्यान जमींदारी और साहूकारों के अत्याचारों की ओर भी गया।

इसी समय एक घटना घट गई। सिरूर तालुके में करदहे नामक एक गांव था। इस गांव में एक गरीब किसान के खिलाफ साहूकार ने अदालत से डिग्री ले ली। उसके नौकरों ने किसान का घर छीन लिया। करदहे ग्राम के किसान उत्तेजित हो उठे। धीरे-धीरे यह विद्रोह समूचे पुणे ज़िले में फैल गया। गरीब किसानों ने साहूकारों-सूदखोरों के घरों पर, उनकी दुकानों पर हमला कर दिया। वे क़र्ज के दस्तावेज जलाने लगे। यही नहीं, उन्होंने खेत जोतना भी बंद कर दिया। अब तो और स्थानों पर भी किसानों में विद्रोह फैल गया। विद्रोह दबाने के लिए सरकार ने पुलिस बुलवाई। उससे काम न बना तो सेना आई। किसी तरह

विद्रोह दबा। पर किसानों में चेतना जागृत हो गई। ज्योतिबा ने इस विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् 1889 में बंबई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन के प्रवेश द्वार पर ज्योतिबा ने एक किसान का पुतला खड़ा किया। वे किसानों की दुर्दशा की ओर कांग्रेस का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे। उन्होंने घोषणा की कि "जब तक कांग्रेस के लोगों में इस बहुसंख्यक किसान समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं होगा, तब तक जनता का नेतृत्व करने में तुम असफल रहोगे।"

ज्योतिबा शुरू से ही किसानों की दुर्दशा के प्रति चिंतित थे। सन् 1883 में उन्होंने मराठी में एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में किसानों की समस्याओं का वर्णन था। उसमें यह भी बताया गया था कि किसान कितने गरीब हैं। कितने अशिक्षित और धर्मभीरू हैं।

ज्योतिबा पिछले दो-तीन वर्षों से यह पुस्तक लिख रहे थे। वे उसकी पांडुलिपि के अंश लोगों को पढ़कर सुनाते। जो भी उन्हें सुनता, उनसे प्रभावित होता। ऐसे ही लोगों में बड़ौदा के महाराजा सयाजी गायकवाड़ भी थे।

महाराजा गायकवाड़ सन् 1881 में गद्दी पर बैठने के बाद पुणे आए थे। तब ज्योतिबा भी उनसे मिले। महाराजा गायकवाड़ उनसे, उनके विचारों से बेहद प्रभावित हुए। ज्योतिबा ने उन्हें अपनी पांडुलिपि के कुछ अंश भी पढ़कर सुनाए। महाराजा गायकवाड़ भी, किसानों के हमदर्द थे। उन्होंने पांडुलिपि के प्रकाशन के लिए ज्योतिबा को आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया।

इस पुस्तक में ज्योतिबा ने अंगरेज़ों की नीतियों की भी आलोचना की थी। उन्होंने लिखा कि अंगरेज़ों ने भी गरीब किसानों पर स्थानीय करों का बोझ लाद दिया है। नमक जैसी

आम उपयोग की वस्तु पर भी कर लगा दिया गया है। तालों, झीलों, नदियों में मिट्टी जमा है। किसान नहरों के पानी से वंचित हैं। पशुधन भी बर्बाद हो रहा है। इसके लिए बाहर से अच्छी नस्ल के पशु लाने चाहिए।

उनके सुझावों का अच्छा प्रभाव पड़ा।

ज्योतिबा जो कहते थे, उसे करते भी थे। पुणे के पास उन्होंने दो सौ एकड़ का एक कृषि फार्म बनाया था। इसमें उपयोगी वृक्ष लगाए गए। उन्नत बीजों, सुधरे कृषि यंत्रों, अच्छी खाद और नहर के पानी का कितना लाभ होता है, यह प्रत्यक्ष बताया गया था।

15

सत्य शोधक समाज

(23 सितम्बर 1873)

पुणे में समूचे महाराष्ट्र से लगभग साठ व्यक्ति एकत्र हुए थे—वे सभी प्रतिष्ठित थे, जाने-माने समाज सेवक थे। वे एक पवित्र उद्देश्य से एकत्र हुए थे। उद्देश्य था समाज में सुधार के लिए एक संगठन की स्थापना।

इन सभी लोगों को ज्योतिबा ने पुणे में आमंत्रित किया था। उनके अनेक सहकारी भिन्न-भिन्न शहरों में काम कर रहे थे। ज्योतिबा चाहते थे कि सबको संगठित किया जाए। इससे दो लाभ होंगे। एक तो सामाजिक सुधार का कार्य सुचारू रूप से चलेगा, दूसरा, विरोधियों को भी समुचित उत्तर दिया जा सकेगा। अपने इन्हीं विचारों को पत्र का रूप देकर ज्योतिबा ने भेजा था।

लोग उत्साह से आए। विचार-विमर्श किया। फिर एक संगठन स्थापित किया गया। उसका नाम रखा गया—"सत्य शोधक समाज"।

इस समाज के छह सिद्धांत थे—

1. ईश्वर एक है अतः वह सर्वव्यापी, निर्गुण, निर्विकार एवं सत्स्वरूप है। सारे मनुष्य प्राणी उसके प्रिय पुत्र हैं।
2. ईश्वर की भक्ति करने का प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण अधिकार है। जिस भांति माता-पिता को संतुष्ट करने के लिए किसी मध्यस्थ दलाल की आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह

सर्वसाक्षी परमेश्वर की भक्ति के लिए भट्ट दलालों की आवश्यकता नहीं।

3. मनुष्य जाति की अपेक्षा, गुणों से श्रेष्ठ समझा जाता है।
4. कोई भी ग्रंथ न तो ईश्वर प्रणीत है और न पूर्ण प्रमाण है।
5. परमेश्वर सावयव रूप में अवतार नहीं ग्रहण करता।
6. पुनर्जन्म, कर्मकांड, जपतप ये बातें अज्ञान मूलक हैं।

सत्य शोधक समाज के पहले अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष ज्योतिराव फुले बनाए गए। मंत्री थे नारायणराव गोविंदराव कडलक। इनके अतिरिक्त 48 सभासद थे। इनमें सावित्रीबाई फुले और सावित्रीबाई रोडे नामक महिलाएं भी थीं। इन सदस्यों में कई पदाधिकारी थे। उसमें कई जातियों और धर्मों के लोग थे।

इस समाज में रविवार का दिन सामुदायिक प्रार्थना के लिए रखा गया। कारण, यह दिन अवकाश का होता था।

ज्योतिबा और उनके सहयोगी गाँव-गाँव जाते। लोगों में अपने विचारों का प्रचार करते। वे कहते–

ईश्वर एक है। मूर्तिपूजा और अन्य उपासना मार्ग गौण हैं। उससे ईश्वर की पूजा नहीं होती। प्यास लगने पर हम पानी पीते हैं, भूख लगने पर भोजन करते हैं। इसी प्रकार अंतर्मन की शुद्धि के लिए ईश्वर की उपासना यही मार्ग है। इसके लिए भट्ट या अन्य जाति के किसी दलाल की आवश्यकता नहीं। ... पाप, पुण्य, मोक्ष और उसके लिए पुनर्जन्म या स्वर्ग की बात मिथ्या है। अपने कार्यों द्वारा ही मनुष्य इस मृत्युलोक में स्वर्ग अर्थात सुख, मृत्यु अर्थात दुःख का निर्माण कर सकता है। ये सब उसी के कर्म का फल है। तुम पर आकाश के ग्रहों या पृथ्वी पर देवताओं का कोप नहीं है। उससे मुक्ति देने के लिए ईश्वर न तो अवतार लेते हैं और न आदेश देते हैं। तुम्हें स्वयं अपना मार्ग बनाना है। इसके लिए न तो तीर्थों में जाने की आवश्यकता है, न गुरूप्रसाद की। तुम्हारे सद्विचार ही तुम्हारे गुरु हैं। उनके आदेश ही तुम्हारा

धर्म है। इन्हीं के लिए जीवित रहो। इन्हीं के लिए मरो।

प्रत्येक रविवार को सामुदायिक प्रार्थना की जाती। यह मराठी भाषा में होती। फिर संत तुकाराम, नामदेव आदि के अभंग गाये जाते। अन्य महापुरुषों के विचार भी सुनाए जाते।

सत्य शोधक समाज के प्रचारक सिर पर साफा बांधते, कांधे पर कंबल रखते, उनके हाथ में ढोल होता। वे ढोल बजाते। लोगों को एकत्र करते। फिर उन्हें सत्य शोधक समाज के उद्देश्य समझाते। वे लोगों को नारी शिक्षा का, दलित शिक्षा और, स्वदेशी वस्तुओं का महत्व समझाते। सच्चे धर्म का मर्म बताते। धर्म के नाम पर पाखंड से बचने की सलाह देते।

सत्य शोधक समाज के लोग विवाहों में अपव्यय न करने की सलाह देते। ज्योतिबा टोनाटोटका, मूर्तिपूजा आदि का विरोध करते।

शीघ्र ही सत्य शोधक समाज लोकप्रिय हो गया। दलित बस्तियों, कामगारों की बस्तियों, गरीबों की बस्तियों में सत्य शोधक समाज की शाखाएं स्थापित होने लगीं।

इससे पुरोहित वर्ग क्षुब्ध हो उठा। कारण अब दलित समाज के लोग उनके पास नहीं आते थे। इससे उनकी आय भी घट गयी। उन्होंने एक उपाय सोचा, लोगों को सत्य शोधक समाज के खिलाफ भड़काया जाए। उन्होंने प्रचार करना शुरू किया—ज्योतिबा सबको ईसाई बना देगा। मराठी भाषा में ईश्वर की प्रार्थना करने से क्या लाभ! वह तो ईश्वर के पास पहुंचती ही नहीं। कुछ लोग उनकी बातों में आ भी गए। वे लोग ज्योतिबा के पास अपनी शंकाओं के समाधान के लिए गए। उन्होंने उन्हें समझाया, बताया कि कट्टरपंथी क्यों ऐसा गलत प्रचार कर रहे हैं।

सत्य शोधक समाज की लोकप्रियता बढ़ने लगी। इन्हीं दिनों एक दिलचस्प घटना घटी।

शाजी पाटिल नामक एक किसान ज्योतिबा और उनके सत्य शोधक समाज से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने अपने पुत्र के विवाह में किसी भी पुरोहित को नहीं बुलवाया। इस पर ओतुर गांव के पुरोहित वामन जगन्नाथ और शंकर बापूजी ने शाजी पाटिल के विरुद्ध मानहानि का दावा कर दिया।

पाटिल परेशान हो गए। वे ज्योतिबा के पास गए। उन्होंने कहा, चिंता न करो। हम लोग मुकदमा लड़ेंगे।

पुणे के प्रथम श्रेणी के सब-जज की अदालत में सुनवाई हुई। अदालत में पाटिल ने कहा कि उनके पुत्र का विवाह विधि-सम्मत है। यह विवाह उनकी जाति के ही व्यक्ति ने कराया है। उनके पूर्वज भी ऐसा ही किया करते थे।

अदालत ने उनका तर्क मान लिया। डिग्री खारिज कर दी। यह नवम्बर 1887 की बात है। इससे सत्य शोधक समाज के सिद्धांतों का समर्थन हुआ। उधर कट्टर पंथियों ने बंबई हाईकोर्ट में अपील करने की ठानी।

16

सभा के श्रोता बने बाराती

ज्योतिबा ने विवाह की एक सरल विधि प्रचलित की थी। उसमें अपव्यय नहीं होता। किसी पुरोहित को नहीं बुलवाया जाता था। न किसी को दान-दक्षिणा दी जाती थी।

25 दिसम्बर 1873 को ज्योतिबा द्वारा बताई गई विधि से पहला विवाह हुआ। इस विवाह में वर का नाम था सीताराम अल्हाट और वधू का नाम था राधाबाई। विवाह के लिए किसी ब्राह्मण को नहीं बुलवाया गया था। अतः उन लोगों ने इस विवाह का विरोध किया। वर-वधू की जाति के पंचों ने इस विवाह को ठीक नहीं समझा। उन्होंने दोनों को जाति से बाहर करने की धमकी दी। पर कोई फल नहीं निकला। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। उसमें सत्य शोधक समाज के सदस्य भी बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। ज्योतिबा भी आए। उन्होंने एक मंगलाष्टक तैयार किया था। उसे स्वयं वर-वधू ने पढ़ा। एक दूसरे को हार पहनाया। फिर बड़ों से आशीर्वाद लिया। सभी लोगों को पान-सुपारी दी गई। बस, इसके अतिरिक्त विवाह में कोई खर्च नहीं हुआ।

इस विवाह से औरों को भी प्रेरणा मिली।

पुणे के पास हडपसर नामक एक गांव है। वहां ग्यानबा नामक एक किसान रहते थे। ग्यानबा का विवाह काशीबाई शिंदे नामक एक युवती से तय हुआ। वर-वधू के माता-पिता सत्य

शोधक समाज के सदस्य थे। उन्होंने समाज की नई रीति से ही विवाह करने का निश्चय किया।

उधर ऐसे विवाहों के विरोधी शांत नहीं बैठे। उन्होंने घोषणा की कि वे यह विवाह नहीं होने देंगे। अब क्या था, ज्योतिबा भी अपने मित्रों-समर्थकों सहित विवाह-स्थल पर पहुंच गए। बेहद तनाव उत्पन्न हो गया। मारपीट की नौबत आ गई। अंत में पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। 7 मई 1874 को यह विवाह सानंद संपन्न हो गया।

सत्य शोधक समाज की यह नयी विवाह रीति बेहद सरल थी। उसमें अपव्यय भी नहीं होता था। इसलिए वह लोकप्रिय होने लगी।

शिवनेरी की पहाड़ियों की तलहटी में एक गांव है ओतूर। वहाँ भाऊसाहब डुंबरे पाटिल नामक एक किसान रहते थे। वे सत्य शोधक समाज के सदस्य थे। उन्हें विवाह की यह नई पद्धति बहुत भाई। उन्होंने तय किया कि अपने गांव में भी इसी रीति से विवाह होना चाहिए। उन्होंने ज्योतिबा और समाज के अन्य नेताओं को गांव में निमंत्रित किया। इन लोगों का व्याख्यान कराया। आसपास के गांवों के हजारों ग्रामीण इन व्याख्यानों को सुनने पहुंचे।

गांव के बालाजी पाटिल डुंबरे तो इन व्याख्यानों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उसी समय अपने बेटे का विवाह नई रीति से करने का निर्णय कर लिया। बस, तैयारी तो कुछ करनी नहीं थी। बिना किसी पुरोहित के विवाह सानंद संपन्न हो गया। व्याख्यान सुनने आए लोग बाराती बन गए। बालाजी पाटिल ने सबका अतिथि-सत्कार किया।

उस विवाह से आम ग्रामीण प्रसन्न थे। कुछ लोग थे, जो क्रुद्ध थे। ये थे, पुरोहित। उनकी रोजी-रोटी खत्म होनी जा रही थी। ओतुर और आसपास के पुरोहित एकत्र हो गये। उन्होंने तय

किया कि जुन्नर की अदालत में एक मुकदमा दायर किया जाए। इस काम में उन्हें पुणे के भी कई लोगों क़ा समर्थन मिला। अदालत में मामला दायर कर दिया गया। जुन्नर की अदालत ने डुंबरे पाटिल के विरुद्ध फैसला दिया। पर बालाजी पाटिल जरा भी नहीं घबराए। वे पुणे पहुंचे। वहां उन्होंने, राजन्ना लिंग वकील, गंगाराम भाऊ, म्हस्के वकील आदि की सलाह ली। फिर पुणे की अदालत में अपील दायर कर दी। अब पुणे के दो भागों में संघर्ष छिड़ गया। इसमें एक भाग पश्चिम में था—इसमें सदाशिव पेठ, नारायण पेठ थे। पूर्वी भाग में गंज, बेताल पेठ, लश्कर आदि क्षेत्र थे। पश्चिमी भाग पुरोहितों का था। वे कलम के धनी थे। पूर्वी भाग में आम जनता थी, जिसमें बहुत उत्साह था।

पुणे की अदालत ने डुंबरे पाटिल के पक्ष में फैसला किया। पर लड़ाई यहीं खत्म नहीं हुई। दूसरे पक्ष ने बंबई हाई कोर्ट में अपील कर दी। दोनों ओर से अनुभवी वकील बंबई पहुंचे। ज्योतिबा भी स्वयं बंबई गए।

यह मुकदमा आन-बान का था। उसके फैसले का दूर तक असर होता। अतः सत्य की जीत हुई। डुंबरे पाटिल की यहां भी विजय हुई।

17

"दीनबंधु" का प्रकाशन

सत्य शोधक समाज की सफलता ने ज्योतिबा को उत्साहित किया। अब उन्होंने एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने का निर्णय किया। उन्होंने उसका नाम रखा "दीनबंधु"। इस कार्य में उनके मित्रों ने भी भरपूर सहायता दी।

सन् 1876 की बात है। बंबई से एक छापाखाना पुणे भेजा गया। भेजनेवाले थे—रामैया व्यकैया अय्यावारु और कालाजी कालेवार। ये दोनों ज्योतिबा के मित्र थे, प्रशंसक थे। पर इसी बीच केशवराव भालेकर ने अपने धन से एक छापाखाना खोल लिया था।

इसी छापेखाने में 1 जनवरी 1877 को "दीनबंधु" का पहला अंक छपा। शुरू-शुरू में उसके केवल पांच ग्राहक थे। पर ज्योतिबा और उनके साथी निराश नहीं हुए। वे जानते थे कि धीरे-धीरे लोग "दीनबंधु" को अवश्य अपनायेंगे। यही हुआ भी।

उन्हीं दिनों की बात है। महाराष्ट्र में घोर अकाल पड़ा। वर्षा नहीं हुई। खेत सूख गये। चारे का अभाव हो गया। पशु बेमौत मरने लगे। लोग अनाज के लिए अपनी संतान बेचने पर विवश हो गए। चारों ओर निराशा और दु:ख का वातावरण छा गया।

ज्योतिबा ने देखा, अकाल के कारण जनता दु:खी है। लोग भूख से मर रहे हैं। उन्होंने "दीनबंधु" में एक लेख लिखा—

''शेतकरपांचा असूड'' इस लेख में अकाल पीड़ित लोगों की अवस्था का चित्रण था। उसे पढ़कर लोग द्रवित हो उठे। ज्योतिबा ने सरकार से मांग की कि शीघ्र ही राहत कार्य शुरू किए जाएँ। लोगों के लिए अनाज, पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था की जाए।

महाराष्ट्र के अन्य समाचार पत्रों ने भी इस मांग का समर्थन किया। अंतत: सरकार को कदम उठाने पड़े। राहत कार्य शुरू किए गए। सस्ती दर पर अनाज बेचने के लिए दुकानें खोली गईं।

''दीनबंधु'' परीक्षा में खरा उतरा। अब ज्योतिबा ने सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करना शुरु किया। वे ''दीनबंधु'' में लेख लिखते, सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश करते। धर्म के नाम पर पाखंड करनेवालों की पोल खोलते।

20 मार्च 1877 के ''दीनबंधु'' में सत्य शोधक समाज की वार्षिक रिपोर्ट छपी। इसने तो आग में घी का काम किया। ''समाज'' की इतनी प्रगति! कट्टरपंथी चिंतित हो उठे। उन्होंने ज्योतिबा और उनके सत्य शोधक समाज की कटु आलोचना शुरू कर दी। वे भी संगठित हो गए। उन्होंने भी एक समाचार पत्र प्रकाशित किया। इसमें ज्योतिबा के, सत्य शोधक समाज की कड़ी आलोचना की जाती।

ज्योतिबा के लिए यह कोई नई चुनौती नहीं थी। उन्होंने ''दीनबंधु'' के माध्यम से हर आलोचना का दो टूक उत्तर दिया।

''दीनबंधु'' की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ने लगी।

18

देशभक्तों की सहायता

ज्योतिबा सच्चे देशभक्त थे। देशभक्तों की सहायता के लिए वे सदैव तैयार रहते थे।

सन् 1881 की बात है। पुणे से दो समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे। इनमें से एक था "केसरी" दूसरा था "मराठा"। "केसरी" के संपादक थे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक। "मराठा" का संपादन करते थे गोडा आगरकर। इन दोनों ने अपने-अपने समाचारपत्र में एक-एक अग्रलेख लिखा। उसमें पुणे के रावबहादुर महादेव वासुदेव बर्वे और सरकार की आलोचना की गई थी।

सरकार को यह आलोचना सहन नहीं हुई। उसने तिलक और आगरकर पर राजद्रोह का मुकदमा चला दिया। दोनों को क़ैद में भी डाल दिया। उनकी ज़मानत के लिए कोई आगे नहीं आया।

बड़ी विषम स्थिति थी। क्या किया जाए! ज्योतिबा ने सत्य शोधक समाज के एक सदस्य से बात की। उनका नाम था रामचंद्रसेठ उरवणे। वे भवानीपेठ में रहते थे। प्रभावशाली दलाल थे। रामचंद्रसेठ उरवणे आगे आए। उन्होंने अदालत में तिलक-आगरकर के लिए दस हजार रुपये की जमानत दी। फिर मुकदमें में खर्च के लिए भी राशि दी। पर सरकार तो तिलक-आगरकर को दंड देने पर तुली हुई थी। अदालत ने

तिलक-आगरकर को चार-चार माह की सादी क़ैद की सज़ा सुना दी।

10 दिनों के बाद दोनों संपादकों की रिहाई हुई। उनका स्वागत करने वालों में जो सबसे पहले पहुंचे, वे ज्योतिबा ही थे। बंबई में दोनों संपादकों का शानदार जुलूस निकाला गया।

पुणे में भी ज्योतिबा ने दोनों संपादकों के स्वागत की तैयारी की। तिलक-आगरकर का जबर्दस्त स्वागत किया गया। ज्योतिबा ने सभा में सरकार की कड़ी आलोचना की "दीनबंधु" में भी लेख प्रकाशित किए।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना की गई। सर ह्यूम नामक एक यूरोपीयन ने ही यह संस्था बनाई थी। इन दिनों की कांग्रेस आज जैसी नहीं थी। उसमें बड़े-बड़े व्यापारी, अधिकारी और रावबहादुर ही भाग लेते थे। पुणे में एक और संस्था स्थापित की गई थी। उसका नाम था—सार्वजनिक सभा। इसे ग०बा०जोशी नामक एक सज्जन ने स्थापित किया था।

ज्योतिबा इन दोनों संस्थाओं के आलोचक थे। कारण, तब इन संस्थाओं में किसानों-मजदूरों का कोई प्रतिनिधि नहीं था। ज्योतिबा चाहते थे कि कांग्रेस में किसानों-मजदूरों को भी शामिल किया जाए। उनके हित पर ध्यान दिया जाए।

इसीलिए 1889 में बंबई में जब कांग्रेस की सभा हुई तो ज्योतिबा ने मांग की कि कांग्रेस में किसानों-मजदूरों के भी प्रतिनिधि शामिल किए जाएँ। पर उनकी बात नहीं सुनी गई।

अतः ज्योतिबा ने पुणे में एक आमसभा की। इसका आयोजन सत्य शोधक समाज ने किया था। इस सभा में हजारों लोग आए। सबने ज्योतिबा की बात का समर्थन किया। मांग की कि कांग्रेस में किसानों-मजदूरों को भी प्रतिनिधित्व मिले।

जन्म एक नए ध्वज का

सन् 1885 में ही एक और घटना घटी। महाराष्ट्र में एक त्योहार मनाया जाता है—गुड़ी पाड़वा। यह नए वर्ष का पहला दिन माना जाता है। चारों ओर आनंद का वातावरण छाया रहता है।

सन् 1885 में ज्योतिबा ने गुड़ी पाड़वा नए ढंग से मनाई। उस दिन उन्होंने झंडा समारोह आयोजित किया। बाजे-गाजे के साथ एक जुलूस निकाला गया। जुलूस में एक झंडा लहरा रहा था। इस झंडे में तीन रंग थे—हरा, लाल और पीला। झंडे के साथ-साथ चल रहे थे ज्योतिबा, कृष्णराव भालेकर, लक्ष्मणराव घोरपड़े, डॉ० गोवंडे, रामैया अकावार और रानाडे।

यह झंडा-जुलूस पुणे की प्रमुख सड़कों पर निकला। रात के नौ बजे एक विशाल सभा हुई। उसमें विद्वानों के भाषण हुए।

इस जुलूस का लोगों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। "दीनबंधु" में भी उसका समाचार छपा। यह जुलूस सत्य शोधक समाज की ओर से निकाला गया था। लोगों ने स्थान-स्थान पर सत्य शोधक समाज का वार्षिकोत्सव मनाने का निश्चय किया।

जगह-जगह से ज्योतिबा को निमंत्रण भेजे गए। सतारा, शोलापुर, अहमद नगर, नासिक, कोल्हापुर, बड़ौदा, पुणे, बंबई, सभी जगह वार्षिकोत्सव आयोजित किए गए।

तय किया गया कि "सत्य शोधक निबंध माला" प्रकाशित की जाए। इससे युवकों को प्रोत्साहन मिलता। उनका ज्ञान बढ़ता। अच्छे निबंध के लिए पुरस्कार की भी घोषणा की गई।

भाषण-प्रतियोगिता आयोजित करने का भी निर्णय किया गया। लोखंडे और कृष्णराव भालेकर ने इन दोनों कामों की जिम्मेदारी उठाई।

ज्योतिबा व्याख्यान देने बंबई गए। थाणे में भी उनका भाषण हुआ। वे पुणे लौटे तो उन्हें एक और निमंत्रण मिला। यह निमंत्रण बड़ौदा के दीवान बहादुर धामणकर ने भेजा था। वे भी सत्य शोधक समाज के पुराने सदस्य थे। ज्योतिबा के वे मित्र थे।

उनके निमंत्रण पर ज्योतिबा बड़ौदा गए। बड़ौदा जाने के पूर्व ज्योतिबा ने महाराजा सयाजीराव के नाम एक पत्र लिखा। यह कविता में था। उसमें बहुजन समाज की दुर्दशा का वर्णन था। यह पत्र उन्होंने अपने मित्र धामणकर के जरिए भेजा था। पत्र में लिखा गया था कि पुरोहित वर्ग जनता के अज्ञान का लाभ उठा रहा है। सरकार लोगों में शराब पीने की लत डाल रही है।

पत्र भेजने के बाद ज्योतिबा बड़ौदा गए। वहां तीन-चार स्थानों पर उनके व्याख्यान हुए। वे बड़ौदा महाराजा से भी मिले। सयाजी गायकवाड़ ज्योतिबा से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने जनता के कल्याण के लिए कई योजनाएँ शुरू करने का वचन दिया।

बड़ौदा से ज्योतिबा बंबई आए। वहाँ भी उनके व्याख्यान हुए। वहाँ उन्होंने सत्य शोधक समाज के कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन भी किया।

14 जून 1887 को एक घटना घट गई। तलेगाँव नामक नगर में नाई समाज में एक विवाह था। ज्योतिबा भी उसमें उपस्थित थे। उसमें कोई ब्राह्मण नहीं बुलवाया गया था। तलेगांव के ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। उन्होंने स्वयं हजामत बनानी शुरू कर दी। इसका विपरीत परिणाम हुआ। गाँवों के लोगों ने ब्राह्मणों को बुलाना छोड़ दिया। कहा, "तुमने तो ब्राह्मणत्व त्याग कर हजामत बनानी शुरू कर दी है।"

अंत में तलेगांव के ब्राह्मणों ने सभा कर सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगी।

इसी बीच एक और विवाद उत्पन्न हो गया। नाई समाज ने विधवाओं के बाल काटने से इनकार कर दिया। दोनों पक्षों में विवाद बढ़ गया। ज्योतिबा शुरू में विधवाओं के केश काटने के विरुद्ध थे। उन्होंने नाई समाज का समर्थन किया। पुणे में भी इस विवाद की चर्चा हुई। यहाँ तक कि सन् 1890 में बंबई में कांग्रेस अधिवेशन में भी इस प्रश्न पर चर्चा की गयी।

"महात्मा" की उपाधि

(19 मई 1888)

बंबई का कोलीवाड़ा हॉल। फूलों और लताओं से सजा-धजा। लोगों की भारी भीड़। सब एक व्यक्ति की प्रतीक्षा में।

कौन था वह व्यक्ति! और कोई नहीं, ज्योतिबा

ज्योतिबा साठ साल के हो गए थे।

बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने सामाजिक कार्य हाथ में लिए थे। धीरे-धीरे चालीस वर्ष बीत गए। इन चालीस वर्षों में ज्योतिबा ने जाने कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं। कितनों का विरोध सहा। पर वे अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटे।

आज की सभा में उनका सार्वजनिक सम्मान किया जाने वाला था। उन्हें "महात्मा" की उपाधि से विभूषित करने का निश्चय किया गया था।

सभा में अनेक विद्वान उपस्थित थे। इनमें थे न्यायमूर्ति रानाडे, डा० भंडारकर, तुकाराम तात्या, वंडेकर, लोखंडे, धोले, भालेकर।

सभा शुरू हुई। राव बहादुर लोखंडे ने सबका स्वागत किया। सभा का उद्देश्य बताया। फिर राव बहादुर वंडेकर ने ज्योतिबा को महात्मा की उपाधि से विभूषित किया।

तालियों की गड़गड़ाहट से सारा वातावरण गूंज उठा।

अंत में ज्योतिबा का भाषण हुआ।

उन्होंने कहा,

''मित्रों, मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मैं मनुष्य के रूप में ही जीवित रहना चाहता हूँ। आप मुझे ऐसी पद्वी देकर मनुष्यों के बीच से उठाएँ नहीं। हम सब परमेश्वर की ही संतान हैं। वही सच्चे अर्थों में महा-आत्मा है। वही सारे जग में व्याप्त है। तुम्हारे सबके हृदय में भी वही सूक्ष्मरूप में उपस्थित है। उसे जागृत करो। समझो कि दूसरे के अंत:करण में निवास करने वाला हमारे अंत:करण में निवास करनेवाले का ही रूप है। जब हम एक दूसरे को इस रूप में पहचान जाएँगे तो यह विश्वास हो जाएगा कि हम सभी 'महात्मा' स्वरूप हैं। यह गौरव, यह सम्मान मेरा नहीं, आप सबका है। सत्य के संशोधक का है। मानवजाति के पुजारियों का है। मैं तो यही मानता हूँ। इसीलिए आप 'सत्य-समता-स्वतंत्रता' के समाज का उद्देश्य कभी भूलो नहीं।''

लोगों ने प्रचंड हर्षध्वनि कर ज्योतिबा के भाषण का स्वागत किया।

इस समारोह के पूर्व पुणे में एक सभारोह हुआ था। सत्य शोधक समाज का चौहदवां वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया गया था। तिथि थी–24 सितम्बर 1887! इसमें अनेक विद्वान उपस्थित थे। बड़ौदा के सयाजी राव गायकवाड़ भी आए थे। सबने समाज के कार्यों की प्रशंसा की। उसे लोगोपयोगी बताया। बाद में इन्हीं लोगों ने तय किया था कि ज्योतिबा को ''महात्मा'' की उपाधि से विभूषित किया जाए। अधिवेशन के मुख्य समारोह में सयाजी राव गायकवाड़ नहीं आ पाए थे। पर उन्होंने अपना एक संदेश भेजा था संदेश में ज्योतिबा को ''महाराष्ट्र का बुकर टी वाशिंगटन'' कहकर संबोधित किया गया था। इसी सभा में ओनुर के कालाजी पाटिल का भी स्वागत किया गया। उन पर ब्राह्मणों ने ''दक्षिणा'' का दावा किया था। इस मुकद्दमें में कालाजी पाटिल की जीत हुई थी। यह जीत सत्यशोधक समाज की ही जीत थी।

21

निर्भीकता का एक प्रेरक प्रसंग

ज्योतिबा निर्भीक थे। साठ वर्ष की अवस्था में भी उनकी निर्भयता में कोई कमी नहीं आई थी। उनकी निर्भीकता का यह प्रसंग प्रेरणास्पद है।

सन् 1889 की बात है। इंगलैंड की रानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आव कनाट भारत आए थे। स्थान-स्थान पर उनका स्वागत किया जा रहा था। पुणे में भी उनका स्वागत किया गया।

इस सभा में पुणे के प्रतिष्ठित नागरिक आमंत्रित थे। सभी अच्छी कीमती वेशभूषा में आए थे। महात्मा ज्योतिबा फुले को भी आमंत्रित किया गया था। वे भी आए, लेकिन कुछ विलंब से। उनकी वेशभूषा विचित्र थी। शरीर पर फटे वस्त्र, पैरों में फटा जूता। पगड़ी भी फटी हुई। दुपट्टा भी फटा हुआ।

ज्योतिबा एक किसान की वेशभूषा में आए थे। प्रवेश द्वार पर खड़े लोगों ने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। ज्योतिबा ने उन्हें निमंत्रण पत्र भी दिखाया। पर लोग नहीं माने।

इस सभा में ज्योतिबा को श्री हरिराव चिपलूणकर ने निमंत्रित किया था। वे ज्योतिबा के पुराने मित्र थे। पुणे नगरपालिका में दोनों ने एक साथ कार्य किया था। एक साथ कई लड़ाइयाँ भी लड़ी थीं।

प्रवेश द्वार पर शोरगुल सुनकर श्री हरिराव चिपलूणकर बाहर आए। उन्होंने ज्योतिबा को देखा। उनकी वेशभूषा देखकर विस्मित भी हुए। पर कुछ बोले नहीं। वे ज्योतिबा को

आदरपूर्वक भीतर ले गए। वहाँ उन्होंने ड्यूक दंपति से उनका परिचय कराया। बताया, वे बहुत बड़े समाज सुधारक हैं।

इधर ज्योतिबा कुरसी पर न बैठकर धरती पर बिछी दरी पर बैठ गए।

सभा शुरू हुई। सबने ड्यूक की प्रशंसा में भाषण किए।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने भी पाँच मिनट बोलने की अनुमति मांगी। कौन इनकार करता?

महात्मा ज्योतिबा फुले उठे।

चारो ओर सन्नाटा छा गया। लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। वे क्या कहते हैं।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने कहा :

"ड्यूक आव कनाट महोदय, आपके स्वागत के लिए यहां अच्छी वेशभूषा में आए लोग हिंदुस्तान के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। उन्हें देखकर आप यह अनुमान मत लगाना कि हिंदुस्तान की परिस्थिति ठीक है। रानी की सारी व्यवस्था अच्छी है। पर यहाँ की प्रजा की अवस्था कैसी हो गई है, यह मेरी वेशभूषा से आपको ज्ञात हो जाएगा। यहाँ मृत्यु पर्यन्त जीने के लिए पेट भर भोजन नहीं मिलता। रहने के लिए जगह नहीं मिलती। लोगों की ऐसी ही दीन-हीन अवस्था हो गई है। रानी से जाकर आप यही कहिएगा।"

कर्तव्य-पूर्ति से ही मिलता है अमरत्व

सन् 1888 में ज्योतिबा एकाएक बीमार पड़ गए। डॉ. विश्रामरामजी घोले ने उनकी मन लगाकर चिकित्सा की। ज्योतिबा ठीक तो हो गए। पर उनका दायाँ अंग बेकार हो गया।

लेकिन ज्योतिबा निराश नहीं हुए। उन्होंने बाएँ हाथ से लिखना-पढ़ना और अन्य कार्य करना शुरू किया। शुरू में उन्हें काफी परेशानी हुई। पर वे धुन के पक्के थे। बाएँ हाथ से ही उन्होंने एक पुस्तक लिखी। उसका शीर्षक है–''सार्वजनिक सत्यधर्म''।

ज्योतिबा और सावित्री बाई ने विधवा ब्राह्मणी काशीबाई के पुत्र का लालन-पालन किया था। फिर उन्होंने उसे गोद ले लिया था। नाम रखा था–यशवंत। ज्योतिबा यशवंत को बहुत चाहते थे। सन् 1887 में उन्होंने अपना वसीयतनामा तैयार करवाया था। इस वसीयतनामे में कहा गया था कि यदि यशवंत मैट्रिक पास नहीं करता है, आवारा सिद्ध होता है तो उसे उनकी संपत्ति का कुछ हिस्सा देकर अलग कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में सारे अधिकार सावित्रीबाई के पास रहेंगे। वे अपनी इच्छानुसार किसी माली, कुनबी, धनगर या शूद्र बालक को उनका उत्तराधिकारी बना सकती हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें सत्य शोधक समाज के बहुमत का भी आदर करना पड़ेगा। इस

वसीयतनामे में उन्होंने यह भी लिखा था कि उनके मृत भाई राजाराम पहले ही अलग हो गए थे। अतः उनकी संपत्ति में उनके भतीजे गणपत का कोई अधिकार नहीं होगा। उन्होंने यह भी लिखा था कि सत्य शोधक समाज की परंपराओं के अनुसार ही अंतिम संस्कार किया जाए। उनका मृत शरीर जलाया न जाए। वरन् नमक के साथ उसे धरती में दबा दिया जाए।

वे बीमार थे। वे चाहते कि अब यशवंत का विवाह कर दिया जाए। यशवंत ने डॉक्टरी की परीक्षा पास कर ली थी। ज्योतिबा ने अपने मित्र ग्यान ससाणे से इसकी चर्चा की। उन्होंने तत्काल अपनी बेटी के साथ यशवंत का विवाह करने की स्वीकृति दे दी। फिर बेटी से पूछा गया। उसने भी अपनी सहमति दी।

4 फरवरी 1889 को यशवंत एवं राधाबाई उर्फ लक्ष्मीबाई का विवाह संपन्न हुआ। इस अवसर पर काफी बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए।

27 नवम्बर 1889 !

पिछले चार-छह दिनों से ज्योतिबा का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। चिकित्सा की जा रही थी। पर कोई लाभ नहीं हो रहा था।

ज्योतिबा जान गए कि उनका अंत समय आ गया है। उन्होंने सबको बुलाया। कहा, अब उपचार बंद करो। अब मनुष्यों के प्रयत्नों का कोई उपयोग नहीं, अतः अब हम महत्वपूर्ण विवादों की चर्चा करें।

पूरे पुणे में यह समाचार फैल गया कि ज्योतिबा बीमार हैं। शायद उनका अंत समय निकट है।

ज्योतिबा गंजपेठ में ही रहते थे। वहाँ लोगों की भीड़ लगने लगी।

27 नवम्बर की रात। सब लोग ज्योतिबा को घेरकर बैठे थे। सावित्रीबाई, यशवंत, उसकी पत्नी और भी कई लोग। सभी चिंतित। चेहरे उतरे हुए।

ज्योतिबा उठे। उन्होंने ईश्वर का स्मरण किया। फिर पानी माँगा। यशवंत ने पानी दिया। पानी पीने के बाद ज्योतिबा ने कहा, ''मित्रो, दुखी मत हो। इस लोक में मेरा समय समाप्त हो गया है। अपने जीवन में मैंने जो काम शुरू किया था, वह प्राय: समाप्त होने को है। तुम सबने इस काम में मुझे बहुत मदद दी। मेरी पत्नी सावित्रीबाई ने भी मेरे कार्य में योग दिया। यशवंत अभी छोटा है। पर उसमें कार्य करने की लगन है। मैं इन दोनों को आप लोगों के हवाले करता हूँ।''

लोगों की आँखों से आँसू फूट पड़े।

यह देखकर ज्योतिबा ने कहा, ''तुम्हें दु:ख होना स्वाभाविक है। पर जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी होगी, यह भी स्वाभाविक बात है। हमारे पूर्वज चले गए। आज मैं जा रहा हूँ। कल तुम भी जाओगे। अत: जहाँ हम सबको जाना है, तब शोक क्यों? मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है। उसी तरह यह देह मिलना भी दुष्कर है। जीवन-मृत्यु एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक के सत्कृत्य पर दूसरे का अस्तित्व है। परलोक और पुनर्जन्म, मैं मानता नहीं। कर्तव्य करते हुए मृत्यु को प्राप्त करना ही अमर हो जाना है। इसी अमरत्व को तुम स्वर्ग समझते हो और उसे प्राप्त करने को मोक्ष, तो जरूर ऐसा समझो। दूसरों के बहकावे में मत आओ। किसी को फँसाओ नहीं, स्वयं भी नहीं फँसो। कोई दूसरा फँसता है तो उसे अपने सत्य धर्म का आधार दो। सत्य ही परमेश्वर है। मानवता ही धर्म है। परस्पर सहयोग ही नीति है। मैं इसी के लिए जीवन भर लड़ता रहा। मुझे काफी कष्ट उठाने पड़े। पर मैं अपने मार्ग से विचलित नहीं हुआ। तुम सब अपने सत्य शोधक समाज के प्रति एकनिष्ठ होकर कार्य करो। स्वार्थ के शिकार मत बनो। ईश्वर के प्रति आदर रखकर काम में जुट जाओ। तुम्हारी तत्वविद्या पर ही जनता का कल्याण निर्भर है। इसमें चूक मत करना। भोला किसान और काम करने वाला

मज़दूर ही तुम्हारा असली देवता है। उनकी पूजा करो। स्वयं भूखों रहकर, अर्धनग्न रहकर यह महादेवता ही जग को जीवित रखता है। उसे भूलने का मतलब है, मानवता का खून करना। कल का किसान और मजदूर ही नये जग का निर्माण करेगा। मैं तुम्हारे हाथों में बहुत बहुमूल्य कार्य सौंप रहा हूँ। इसकी योग्यता के साथ साज-संभाल करना। मेरी धर्मपत्नी और पुत्र, इन दोनों को अपने कार्यों में शामिल करना। मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ, पर मेरी आत्मा हर संकट के समय तुम्हारे साथ रहेगी। मैं आजीवन सत्य के लिए लड़ता रहा। इसीलिए आज मुझे पूर्ण शांति है, संतोष है। इसी सत्य की अंत में विजय निश्चित है।"

इसी बीच पास के टावर ने रात्रि के दो बजाए। घंटे की आवाज वातावरण में गूँज उठी। ज्योतिबा ने सबको प्रार्थना करने के लिए कहा।

लोग भरे मन से प्रार्थना करने लगे।

दो बजकर बीस मिनट पर ज्योतिबा ने सदा-सदा के लिएं आँखें मूँद लीं।

पुण्य कथा है

ज्योतिबा बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका जीवन औरों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। बचपन में शिक्षा पाने के लिए उन्हें कितने कष्ट झेलने पड़े। कितनी बाधाओं का सामना करना पड़ा। पर वे धुन के पक्के थे और थे परिश्रमी। उन्होंने पाठ्य पुस्तकें ही नहीं पढ़ीं, राजनीति और दर्शन के भी ग्रंथ पढ़े। इस अध्ययन का उन पर बड़ा असर पड़ा। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने स्वयं भी लिखना शुरू किया।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। पोवाड़े भी लिखे। कविताएँ भी रचीं।

ज्योतिबा फुले की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है "गुलाम गीरी"।

इस पुस्तक की प्रस्तावना स्वयं ज्योतिबा ने लिखी थी– 1 जून 1873 को। प्रस्तावना में उन्होंने कुछ रूढ़िवादी ब्राह्मणों के पाखंडवाद और शूद्रों की स्थिति पर क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए थे।

इस पुस्तक में छोटे-छोटे सोलह भाग हैं। इसमें घोंडीबा प्रश्न करते हैं और ज्योतिबा इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। शुरू के भागों में अवतारवाद की आलोचना की गई है। पहले भाग में ब्रह्म, सरस्वती, ईश्वर, आर्य लोक का वर्णन है। दूसरे भाग में मत्स्य और शंखासुर की चर्चा है। तीसरे भाग में कच्छप, भूदेव, द्विज, कश्यप राजा आदि पर प्रकाश डाला गया है। चौथे और

पाँचवें भाग में वराह, हिरण्याक्ष, नृसिंह, हिरण्यकश्यप, प्रह्लाद, विप्र विरोचन, बली और वामन के विषय में लिखा गया है। छठे भाग में बली राजा, जोतिबा, मराठे, खंडोबा, मल्लारी आदि का वर्णन है। सातवें भाग में भट, राक्षस, यज्ञ, वाणासुर, मनु, प्रजापति की मृत्यु आदि का वर्णन है। आठवें भाग में परशुराम की कहानी है। नवें भाग में वेद मंत्रों, जादू, शूद्रों को ज्ञान देने पर प्रतिबंध, भागवत और मनुस्मृति के परस्पर अन्तर की चर्चा की गई है। दसवें भाग में ब्राह्मण धर्म की दुर्दशा, शंकराचार्य के नास्तिक मत, कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, बाजीराव, मुसलमानों के द्वेष, अमरीकी और स्कॉट उपदेशकों के विचारों का वर्णन है। ग्यारहवें भाग में साणों, शूद्रों, सरस्वती की प्रार्थना, जप-अनुदान, देव स्नान, दक्षिणा आदि की चर्चा है। बारहवें भाग में यूरोपीय लोगों, तेरहवें भाग में कलेक्टर आदि की चौदहवें में यूरोपीय मजदूरों, पंद्रहवें में सरकारी स्कूलों, नगरपालिकाओं, शूद्रों की पढ़ाई पर प्रतिबंध आदि की विस्तार से चर्चा की गई है। अंतिम भाग में बताया गया है कि ब्राह्मणों से शूद्रों की मुक्ति कैसे हो सकती है!

ज्योतिबा फुले की दूसरी पुस्तक है "इशारा"। सन् 1885 में पुणे में बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ को मानपत्र दिया गया था। इसमें भाषण करते हुए न्यायमूर्ति रानाडे ने कहा था कि यदि हिंदू समाज में जातिभेद है भी तो यह हमारे हितों के आड़े नहीं आता। उनकी इस बात का उत्तर देने के लिए ज्योतिबा ने यह लघु पुस्तिका लिखी थी।

ज्योतिबा की एक अन्य पुस्तक का नाम है—"अस्पृश्यांची कैफियत"। इस पुस्तक में ज्योतिबा ने बताया कि अछूत समाज पर किस प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं और किस प्रकार उनकी प्रगति रोकी जा रही है।

"ब्राह्मणाचे कसब" ज्योतिबा की एक और पुस्तक है। यह कविता में है। इसमें धर्म और देवताओं के नाम पर ब्राह्मण

किस प्रकार जनता को कष्ट देते हैं, इसका वर्णन है।

'जातिभेद विवेक सार' पुस्तक के लेखक तुकाराम तात्या नामक एक प्रगतिशील विचारक थे। पर वे इसे अपने नाम से प्रकाशित कराने का साहस नहीं कर पा रहे थे। अतः ज्योतिबा ने कहा कि इस पुस्तक के लेखक के रूप में मेरा नाम डाल दो।

ज्योतिबा शिवाजी के प्रशंसक थे। सन् 1869 में उन्होंने आठ भागों वाला एक "शिवाजीचा पोवाड़ा" भी लिखा।

सन् 1869 में ही उन्होंने "शेतकरयाच्या आसूड" नामक एक पुस्तिका प्रकाशित कराई। इसमें उनके दो निबंध थे।

इसके अतिरिक्त उन्होंने जाने कितने निबंध लिखे, कविताएँ रचीं। उन्होंने एक नाटक भी लिखा।

सन् 1885 में उन्होंने सतसार नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ किया।

ज्योतिबा की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है—सार्वजनिक सत्यधर्म।

इस पुस्तक में भी प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्योतिबा ने अपने विचार रखे हैं।

पुस्तक में सुख, धर्मपुस्तक, निर्माणकर्ता, पाप पुण्य, पूजा, नैवेद्य, स्वर्ग, स्त्री, पुरुष, धर्म, नीति, तर्क, दैव, सत्य, ग्रह, जन्म, लग्न-विवाह आदि अनेक विषयों पर प्रश्न पूछे गए हैं। इन सभी का उत्तर ज्योतिबा ने दिया है।

कुछ उदाहरण—

यशवंत पूछते हैं कि इस संसार में मनुष्य किस भाँति सुखी रह सकता है?

ज्योतिबा फुले उत्तर देते हैं, सत्यवर्तन के अतिरिक्त मनुष्य संसार में सुखी नहीं रह सकता।

बलवंत राव हरी साकवलकर पूछते हैं कि पुण्य किसे कहेंगे?

ज्योतिबा का उत्तर है, अपने सुख के लिए दूसरे लोगों को शारीरिक-मानसिक कष्ट न देना ही पुण्य कार्य है।

सचमुच दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट न देना, किसी पुण्य से कम नहीं है। इसी बात को प्रसिद्ध भक्त कवि नरसिंह मेहता ने अपने एक भजन में दूसरी तरह से कहा है—

वे कहते हैं—

वैष्णव जन तो तेने कहिए
जो पीर परायी जाने रे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का यह प्रिय भजन था।